अवध की लोक कला

(धरा अलंकरण)

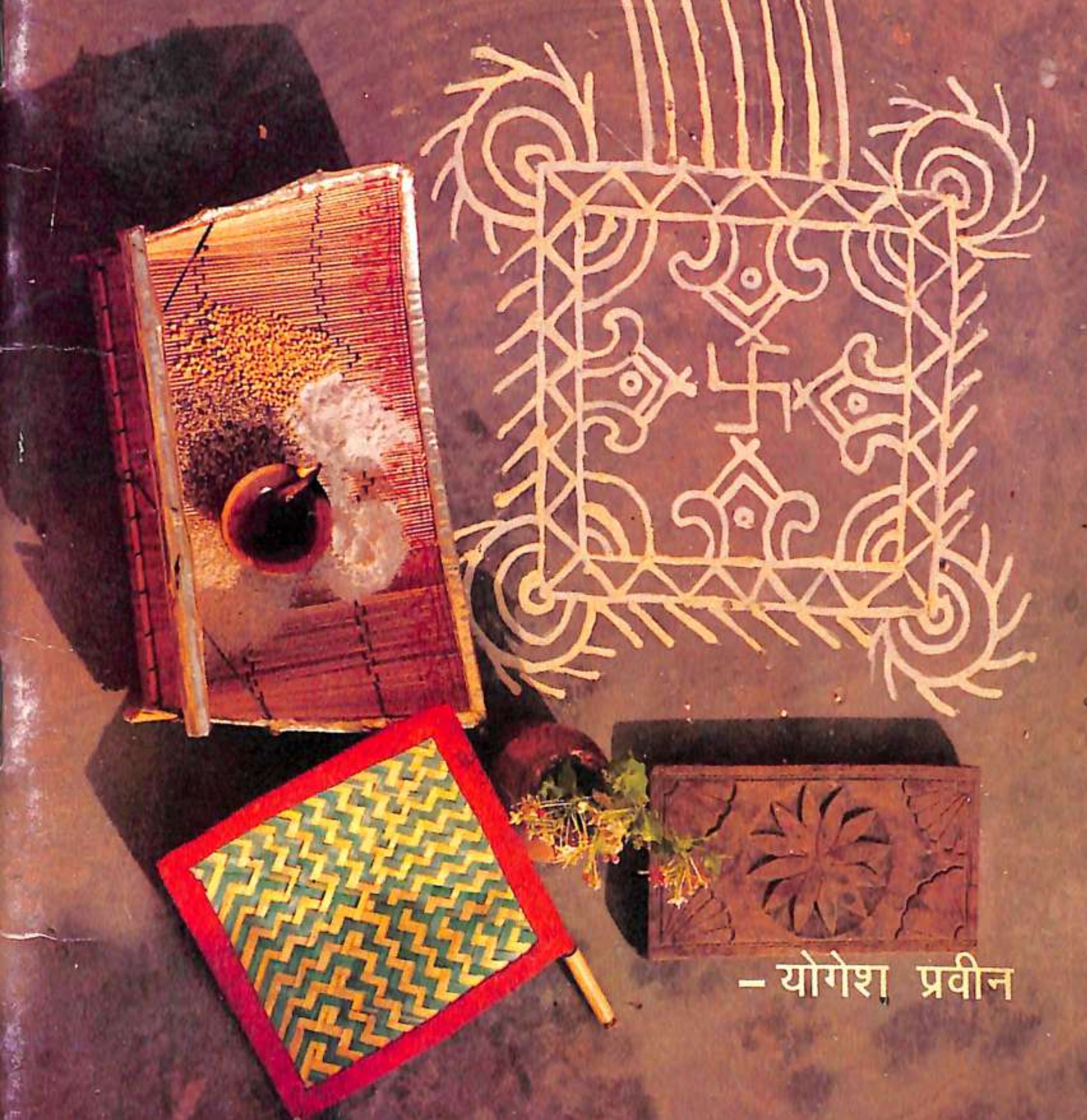

– योगेश प्रवीन

सांस्कृतिक कार्य विभाग, उ०प्र० का प्रकाशन

अवध की लोक कला

(धरा अलंकरण)

– योगेश प्रवीन

संस्कृति विभाग उ०प्र०
उपहार स्वरुप भेंट

सांस्कृतिक कार्य विभाग, उ०प्र० का प्रकाशन

© सर्वाधिकार सुरक्षित – सांस्कृतिक कार्य विभाग, उत्तर प्रदेश

विषय : अवध की लोक कला (धरा अलंकरण)

विशेषज्ञ : **योगेश प्रवीन**

प्रथम संस्करण : मार्च, 1994

सचिव एवं निदेशक, सांस्कृतिक कार्य विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रकाशित
अनुराधा गोयल, उप निदेशक (प्रकाशन) द्वारा सम्पादित
प्रकाशन सहयोग : अजय कुमार अग्रवाल, सहायक निदेशक (प्रकाशन)
प्रकाश पैकेजर्स, 257–गोलागंज, लखनऊ द्वारा मुद्रित।

अपनी बात

विश्व सदन में मनुष्य ही सबसे विवेकशील प्राणी है जिसने विश्व रचयिता के सुन्दर सन्देश और सद्गुणों को पहचाना है। संसार की सुरम्य रचना कर के जगत निर्माता ने मानव को कला की परख ही नहीं दी कलात्मक सृजन की प्रेरणा भी दी है।

धरती की नैसर्गिक सुषमा और मोहक प्रकरणों के साथ जीना मानव मन की प्रमुख अभिलाषा रही है। वो उन्हें निरन्तर अपने आसपास देखना चाहता है, रखना चाहता है। रंगबिरंगे फूल, उपवन, पंछी, पशु, पर्वत, नदियां, लहलहाती हरियाली, सूरज, चांद ये सब उसके संगी साथी बनकर उसके निकट प्रस्तुत होते रहे हैं लोक कलाओं के रूप में। लोक कला की जीवन्त परम्परा का प्राण है इसका सहज स्वरूप और इसका संस्कारगत प्रशिक्षण। इसे सीखने समझने के लिए किसी विशिष्ट ज्ञान की, संस्थान की कोई अपेक्षा नहीं रही है। यह कला मन की सरल अभिव्यक्ति बन कर कर्मकार और सेवारत हाथों से ही पोषित होती रही है और इसमें सन्देह नहीं कि उपकार के सुगन्ध सौरभ से ही ये अलंकरण पवित्रता की प्रतिष्ठा तक पहुंचे हैं। इन प्रतीकों में हमें देवी देंवताओं की छवि–छाया मिलती रही है

भारतीय संस्कृति में लोक कलाओं की उपस्थिति उसी तरह है जिस तरह वीणा के तार में झनकार लिपटी हुई है। अवध की लोक कलाओं का भी अपना विस्तृत सौन्दर्य है जो अलग अलग पर्व संस्कारों पर अपनी अनुपम छटा के साथ प्रस्तुत होता है।

धरा अलंकरण शैली को अवध में चौक रखना या चौक डालना कहा जाता है। इसकी सुरूचिपूर्ण प्रथाओं के कलापूर्ण प्रसंगो को मैंने भरसक प्रयत्नों द्वारा आप सब तक पहुंचाने का एक प्रयास किया है और इस सन्दर्भ में मेरे निम्नलिखित सहयोगी रहे हैं

प्रमुख सहयोग –	श्रीमती रश्मि कामेश	(मध्य अवध शैली)
लोकचित्रांकन –	श्रीमती निर्मला अवस्थी	(गंगा पट्टीशैली)
	श्रीमती सरला अवस्थी	(,,)
	श्रीमती माधुरी शुक्ला	(,,)
	श्रीमती भगवती देवी	(पश्चिमी अवध)
	श्रीमती विमला श्रीवास्तव	(पूर्वी अवध)
कला सज्जा –	गौरव श्रीवास्तव	

इस कार्य परियोजना को कृति रूप में प्रस्तुत करने तथा पारम्परिक कला से जनजागृति करने का सम्पूर्ण श्रेय उ० प्र० सांस्कृतिक कार्य विभाग को है जो अपने उद्देश्य में निस्सन्देह सफल है।

मकर संक्रान्ति
1994

साभार
योगेश प्रवीन

अवध का सांस्कृतिक विभाजन

केन्द्रीय अथवा मध्य भाग

पूर्वी अंचल

गंगा पट्टी का क्षेत्र

पश्चिम प्रभावित क्षेत्र

धरा अलंकरण

लोक कलाओं का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि मानव सभ्यता का इतिहास। सदियां बीत जाने के बाद भी अपनी धरती की भावनाओं से जुड़ी हुई ये कलायें अलग–अलग स्वरूप में मिलती हैं जिसमें इन्सान के मन की अभिव्यक्ति सहज ढंग से होती है।

अवध की लोक कला कृतियों में केवल बाहरी सौन्दर्य ही नहीं जीवन के आध्यात्मिक पक्ष की प्रधानता भी प्रमुख है। कहीं आंगन में बनी हुई मंगल चौक या दीवार पर रक्खे हुए स्वस्तिक में जो प्रधान छवि है वो हमारी अंतः प्रेरणा और आस्था की छवि है। सच पूछा जाये तो ये हमारी संस्कृति का साक्षात् प्रतिबिम्ब है और परमेश्वर के प्रति अनुराग पूर्ण समर्पण है। ऐसी श्रेष्ठ विचारधारा और उच्च भावना कदाचित ही किसी देश में मिलेगी।

लोक कला में यथार्थ चित्रांकन के प्रतीकात्मक अलंकरण का बोल–बाला रहता है फिर भी इसे परावास्तविक शैली नहीं कहा जा सकता है। इस प्रकार के अलंकरण सांसारिक धरातल पर होकर भी सांसारिकता से कहीं ऊपर होते हैं। लोक कलाकार आत्म प्रशंसा का प्रेमी नहीं होता, आत्म प्रचार से दूर रहता है और यही उसका सबसे बड़ा आभूषण है। यहां तो बस एक मंगल कामना है जो सबके लिये है–

सर्वे भवन्ति सुखिना : सर्वे सन्तु निरामया :

ये लोकरंजनी कलायें अवध के आंगनों में बारह मास बहार बनकर रहती हैं। ये मंगल उत्सव, ऋतु सम्मान, शुभ संस्कार या तीज–त्योहार की जीवित पहचान तो हैं ही सबकी कुशल कामना की पवित्र भावना भी इनमें है।

लोक कला की सबसे मधुर भूमिका है कि वह जाति–पाति, ऊंच–नीच अमीरी–गरीबी की दीवारों को तोड़कर अपने सम्मोहन में सबको समान रूप से बांधे हुए है। यह सबको आपस में एक ही धरातल पर लाकर मिलाती है। जनजाति, ग्रामीण परिवेश, साधारण समाज, नागरिक निवेश, अभिजात वर्ग सब कहीं इन आलेखनों का एक सा आदर है। तब ही तो रामचरित मानस में अयोध्या की रानी सुमित्रा स्वयं दशरथ के आंगन में चौक रख रही है –

"चौकें चारु सुमित्रा पूरी" (अयोध्याकाण्ड – रामचरितमानस)

अवध और लोक कलाएं :-

अवध अयोध्या का अपभ्रंश है जो प्राचीन समय से अपने सांस्कृतिक ऐतिहासिक और सामाजिक पृष्ठ भूमि के लिए प्रसिद्ध रहा है। इस भूभाग को उत्तर कोसल के नाम से भी जाना जाता था। श्री

रामजी की जन्म भूमि होने के कारण इस धरती के संस्कारों में राम और जानकी रचे बसे हुए हैं और वैष्णव परम्पराओं के अनुसार ये राधा कृष्ण की लीला भूमि ब्रज के समानान्तर प्रान्त रहा है।

अवध की संस्कृति और अवधी भाषा के लोक गीतों में अवधेश दुलारे राम और जनक नन्दिनी सीता जनमानस के लौकिक जीवन के प्रतिनिधि बने हुये है। यहां के जन्म संस्कार गीतों में राम ही का जन्म संस्कार शिशु के सन्दर्भ में दोहराया जाता है।

जन्म लियो चारो भैया

अवध में बाजी बधैया

इसी तरह विवाह संस्कार में राम और जानकी ही दूल्हा दुल्हन बन कर हमारे सामने मण्डप में आते है क्योंकि अधिकतर विवाह लोक गीतों में वही हमारे अधिनायक–नायिका हैं।

जानकी विवाह के लोक गीतों में गजमुक्ता की चौक डालने का विवरण रहता है।

कंचन का शुभ मण्डप छाया

मनि की बन्दनवारें

गज मोतिन की चौक पुरायी

रतन दीप धरे द्वारे

कि सीता को ब्याह लिये

राम जी

यही अवध के लोक संस्कारों की मौलिक पृष्ठ भूमि है जो न केवल लोक गीतों में बल्कि लोक कलाओं, लोक कथाओं, लोक गाथाओं, लोक नृत्यों, लोक नाट्यों और शिल्प में मिलती है।

वर्तमान में अवध 12 जनपदों का क्षेत्र है। इस विस्तृत भूभाग के उत्तर में नेपाल की सीमा है जो लखीमपुर, बहराइच और गोंडा जनपदों से लगी हुयी है। पश्चिम में रुहेलखण्ड का क्षेत्र है। पूर्व में भोजपुरी संस्कृति क्षेत्र है तो दक्षिण की सीमा रेखा पर गंगा बहती है।

गंगा के तट पर अवध के हरदोई, उन्नाव और रायबरेली जनपद स्थित हैं। गंगा के अतिरिक्त अवध के मध्य भाग से आदि गोमती और सरयू दो और पवित्र नदियां बहती हैं। गोमती के तट पर नैमिषारण्य का प्रसिद्ध तीर्थ है और सरयू के तट पर अयोध्या बसी हुयी है। तराई क्षेत्र में शारदा नदी बहती है जो आगे चलकर घाघरा में मिल जाती है। अवध के तीर्थों में अयोध्या पावन सप्त पुरियों में से एक है। देवी पाटन और ललिता देवी के सिद्ध पीठ हैं, वाराह क्षेत्र (सूकर खेत) है, तथा गोला गोकर्णनाथ (छोटी काशी) का प्रसिद्ध शिव स्थान है।

अवध के सांस्कृतिक परिवेश में शहरी, कस्बाती और ग्रामीण जीवन की विभिन्न झाकियां मिलती हैं और आदिवासियों के नाम पर केवल थारु जन जाति राजस्थान मूल की एक संस्कृति का संरक्षण करती है जो नेपाल तराई से लगे हुये क्षेत्रों में आबाद है। लखीमपुर, बहराइच और गोंडा जिले के सम्पूर्ण नगर, चन्दन चौकी, कौड़ियाला घाट और कोयलावासा आदि क्षेत्रों में इनका प्रमुख रुप से निवास है। इनमें राना, करहरिया और डगौरिया तीन वर्ग होते है। इनकी कला संस्कृति का अपना अलग रुप है लेकिन उसे अवध की मूल संस्कृति से जोड़ा नहीं जा सकता है। क्योंकि अवधी भाषा और संस्कारों के आधार पर इसका और उसका कोई मेल नहीं है। अवध के 12 ज़िले निम्नलिखित हैं :

लखीमपुर, बहराइच, गोण्डा, हरदोई, सीतापुर, बाराबंकी, उन्नाव, लखनऊ, रायबरेली, प्रतापगढ़, सुल्तानपुर, फैज़ाबाद।

अवधी बोली के आधार पर जो दूसरे क्षेत्र प्रभावित है उनमें कानपुर, इलाहाबाद, फतेहपुर और बाँदा ज़िले का कुछ भाग आता है इसलिये संस्कृति का भी कुछ न कुछ प्रभाव इन क्षेत्रों तक मिलता है।

कला और संस्कृति की दृष्टि से सम्पूर्ण अवध को चार प्रमुख खण्डों में बाँटा जा सकता है —

1. *मध्य क्षेत्र* :– इसके अन्तर्गत लखीमपुर, सीतापुर, लखनऊ, बाराबंकी और बहराइच आते हैं।

2. *पूर्वी क्षेत्र* :– इसमें गोंडा, फैजाबाद, सुल्तानपुर और प्रतापगढ़ प्रमुख हैं।

3. *पश्चिमी क्षेत्र* :– इसमें केवल हरदोई का पश्चिमी भाग आता है जो भाषा और संस्कृति के आधार पर अवध में अपनी विशिष्ठ पहचान रखता है और जिस पर पश्चिम उत्तर प्रदेश का प्रभाव अधिक है।

4. *दक्षिण पश्चिम की गंगा पट्टी* :– इसमें हरदोई का कुछ भाग और उन्नाव, रायबरेली, (बैसवारे) के क्षेत्र आते हैं।

यहां लोक चित्रांकन के सन्दर्भ में बहुत सी विधाएं हैं जो संस्कारों, पर्व त्याहारों तथा अन्य मांगलिक अवसरों पर प्रकट होती हैं।

अवध के भूमि अलंकरण :

अवध के भूमि अलंकरण को जनभाषा में चौक डालना कहते हैं। ये अधिकतर पिसे चावल के ऐपन से बनती हैं जिनमें कभी हल्दी मिला देने से सुनहरापन आ जाता है या फिर केवल ऐपन से उजली सफ़ेद चौक पड़ती है। होली की रंगोली आटे और रंगीन गुलालों से बनती है। इसी तरह पूजा अनुष्ठानों में पंडितों द्वारा आटे से चौक पूरी जाती है तथा लकड़ी के पीढ़े पर नवग्रह तथा षोडश मातृकाओं के प्रतीक रखे जाते हैं।

नवग्रह में समानान्तर लकीरों से नौ चौकोर खाने बना लिये जाते हैं जिनमें ग्रहों के रुचि रंग के लिये हरे उरद, गुलाबी मसूर, काले तिल, चावल, हल्दी, रोली, सरसों आदि का प्रयोग किया जाता है। ग्रहों के प्रतीकात्मक चिन्ह वलय, वर्ग, त्रिकोण तथा अन्य आकारों से बनाए जाते हैं। हवन अथवा यज्ञ की वेदी पर भी आटे हल्दी और रोली से चौकें पूरी जाती हैं। वास्तव में ये प्रकरण हमारे पवित्र मनोंभावों के आध्यात्मिक प्रतीक हैं जिनमें हमारी श्रद्धा साकार हो जाती है।

चौक डालने की प्रथा प्रधानत : दो तरह के अवसरों के लिये हैं :-

अ. संस्कारों के भूमि आलेखन :-

सभी शुभ अवसरों पर अवध में चौक डालने का रिवाज है। इसकी महिमा इसी से जानी जाती है कि विवाह में दुल्हन के ससुराल आ जाने पर पहले दिन ही उससे चौक डलवाई जाती है और इस गुण में उसकी प्रवीणता की परख की जाती है क्योंकि चौक रखना चौसठ कलाओं में से एक विशुद्ध कला है। इस रस्म को चौक रखायी भी कहते हैं और इसका बाकायदा नेग भी होता है। परिवार के बड़े लोग चौक देख-देख कर बहू को पुरस्कार स्वरुप कुछ राशि आर्शीवाद सहित देते है। इस चौक के लिये भीगे चावल भी दुल्हन से ही पिसाये जाते हैं और उसमें यह देखा जाता है कि वह ऐपन किस तरह का बनाती है, कितना महीन पीसती है और उसमें पानी को कितनी मात्रा में मिलाती है। ऐपन की पवित्र संस्कारों में ऐसी भाव भीनी भूमिका है, कि उस अदना सी चीज का भी बड़ा आदर होता है और ऐपन की सिल तुरन्त धोई नहीं जाती है। कभी-कभी शरारत में दुल्हन की ननद, जेठानियां चावल में कंकड़ कोयले भी भिगो देती हैं यह देखने के लिये कि चतुर वधू उनको सावधानी से बीन कर निकाल देती है या नहीं क्योंकि ऐपन की ओज पर इन विजातीय पदार्थों का प्रभाव ज़रुर पड़ता है। ऐपन पीसते समय हल्दी का टुकड़ा मिला लिया जाता है जिससे उसे अनुकूल अनुपात में सुनहरा बनाया जा सके। फिर दाहिने हाथ की तर्जनी, मध्यमा और अनामिका के साथ ऐपन में भीगे रुई के छोटे फाहे को अंगूठे से दबाकर एक प्राकृतिक तूलिका के तौर पर धरती पर आलेखन किया जाता है। साफ सुथरी धुली जमीन पर या फिर गोबर से लीपे हुये आयत में ये चौकें रखी जाती है। केवल अनामिका ही भूमि तल पर चलती है जिसके द्वारा ऐपन के दाब से निसृत होकर मन चाहे ढंग से आरेख किया जाता है।

विवाह की पहली चौक नव वधू के जीवन का प्रथम प्रकरण है और यह चौक मंडप के नीचे मंगल कलश के पास ही रखवायी जाती है। इसे मंगल चौक कहा जाता है। यह अवध का एक विशिष्ठ नमूना है जो सारे अवध में थोड़े बहुत फेर बदल के साथ बनाया जाता है। इसके बाद वर्षगांठ, मुण्डन, जनेऊ, कोहबर जैसे अनेक अवसरों पर यही मंगल चौक डाली जाती है। इस तरह परिवार की बड़ी बूढ़ी औरतों की छत्रछाया में नई बहू को लोक कला में अभिरुचि तथा विकास का यह महत्वपूर्ण

अवसर प्राप्त होता है। जिसमें उसे पीढ़ी दर पीढ़ी के ये संस्कार विरासत में मिलते हैं। वह मायके तथा ससुराल की वरिष्ठ महिलाओं से कुछ और परम्परागत शैलियां सीखकर घर आंगन को मंगलमय बनाने की सुखद शुरुआत करती है। यहां इस कला का पूरा उत्तराधिकार स्त्रियों का ही है।

सतिया के साथ बनी हुयी यह मंगल चौक गंगा पट्टी के कान्यकुब्ज ब्राहमण घरानों में संखाई चौक के रुप में प्रस्तुत की जाती है जिसमें चारों कोनों पर बड़ी कलापूर्ण कलियों की सुन्दर सज्जा की जाती है। उन घरानों में परछन के दिन ही नई दुल्हन के द्वारा ऐपन से देहरी मढ़वाने की भी रस्म है जिसमें दरवाजे की चौखट के पास दुल्हन एक कला पूर्ण पट्टी लिखती है। इस आलेखन में चारों ओर बेल के बीच तीन वर्ग रखे जाते है इन वर्गों में बीच के वर्ग में कमल चौक पड़ती है और अगल–बगल के वर्ग सथियाई चौक से सजाये जाते हैं (देखें चित्र नं.1)

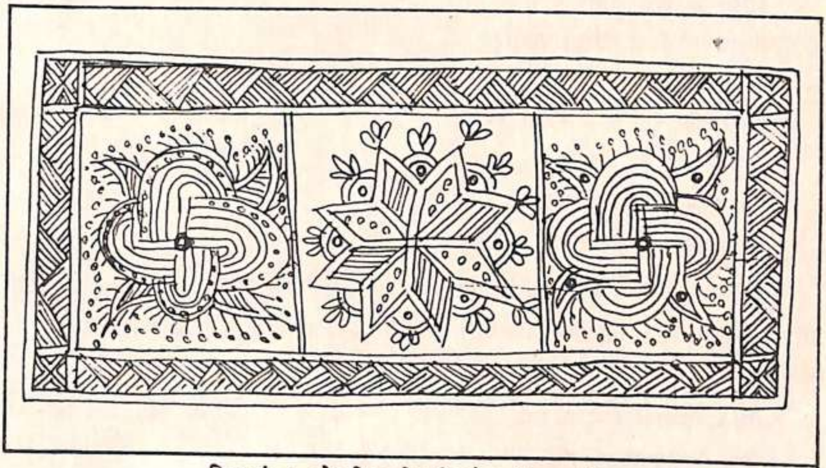

चित्र नं. 1 : देहरी मढ़ने की चौक (गंगा पट्टी)

इसी कुल में दुल्हनों द्वारा ऐपन वाली सिल के ऊपर भी चौक रखवायी जाती है और इस रीत को सिल मढ़ना कहते है। इसमें प्राय : नौ थापों की संरचना की जाती है। ये नौ थापें एक प्रकार से नवग्रहों का लौकिक प्रस्तुतिकरण होता है। कहीं–कहीं केवल सात थापों की परम्परा है।

लड़की के ब्याह में ब्याह के दिन मण्डप के नीचे जहाँ सुहाग की रस्म होती है चौकी के आस–पास चौक डाली जाती है। इसे चंदन चौकी कहते है। लड़की इसी चौकी पर हाथ में सिंदौरा लेकर एक दर्पण के सामने बिठा दी जाती है।

आगंन में घेरा बांध कर सात या चौदह सुहाग देने वाली सुहागिनें लहंगा, दुपट्टा, नथ, पाजेब पहन कर साथ बैठती हैं। इन्हें गौरहरी कहते हैं।

ये औरतें दिन भर के व्रत के बाद शाम को एक साथ ही खाना खाती हैं तब इनकी पत्तलों के नीचे भी सतिया रखे जाते हैं। इसी प्रकार कान्यकुब्जों में भात की रस्म में जो मान्य मण्डप के नीचे भात खाते हैं उनके पत्तलों के नीचे भी चौक रखे जाते हैं।

विवाह के तमाम प्रसंगों में कन्या को अंजुरी भरा कर (अंजलि में भरे चावल पर सिंदूर की डिबिया रखकर) कोहबर के कमरे से आंगन की चौक पर लाकर बिठाया जाता है। अवध के एक ब्याह में बेटी के पिता का उत्साह और आन्तरिक वेदना इस आंगन चौक के साथ इस तरह परिलक्षित होती है :–

गढ़ि सुनरा झुमका, गढ़ि चन्दन हरवा
तिलरी माँ हीरा जड़ाव रे
मानिक मोती से बिंदिया संवारेहु
चमके बेटी केरी मांग रे
एतना पहिर बेटी चौक जो बइठीं
मोतिया बरन ढरें आंस रे
गोरा बदन बेटी सांवर होइगा
मुंहवा गयऊ कुम्हलाय रे

इसी तरह रामजन्म के उत्साह में अयोध्या के आंगन में "मोती चौक" विधि से डाली जाती है। उसका शाश्वत वर्णन यहां गाये जाने वाले 'बारामासा' की पहली ही कड़ी में मिलता है। जिसमें कौशल्या कहती हैं :–

चैत अयोध्या में जन्में जो राम
चंदन से लिपवायऊं धाम
चौक मोतिन के पुराए, कलस कंचन के धराए
अरी– पठये तुम नार,
बैरिनबन बालकमोरे

अवध में नवजात शिशु को बारहवें दिन सूर्य दर्शन कराने की प्रथा है इस सूर्य पूजन परम्परा को बरहाँ या बरहीं कहा जाता है। यह उत्सव बड़े धूम–धाम से मनाया जाता है।

इस दिन तीसरे नहान के बाद प्रसूता को पवित्र मान लिया जाता है और वह सौर (जच्चा घर) के बाहर निकलती है। इस नहान के बाद आड़ में खड़ा होकर देवर भाभी को अवसरानुकूल परिधान पहनने के लिये देता है जो प्राय : लाल लहंगा और पीला दुपट्टा होता है। उस पर नथ और पायल रख दी जाती है।

इस अवसर पर जच्चा के पलंग के पास से बीच आंगन तक हल्दी चावल से सात समान्तर रेखाओं का अटूट रश्मी पथ खींचा जाता है जो सूर्य के सात घोड़ों की लगाम का परिचायक होता है क्योंकि रश्मी का अर्थ संस्कृत में अश्वरास है। इसे बोलचाल में डड़िया भी कहते है। ये डड़िया आंगन में पड़ी चंदन चौक (चौकोर आकार वाली मंगल चौक (देखे चित्र नं.2)) तक जाती है। इस चौक को अधिकतर नाइने रखती हैं।

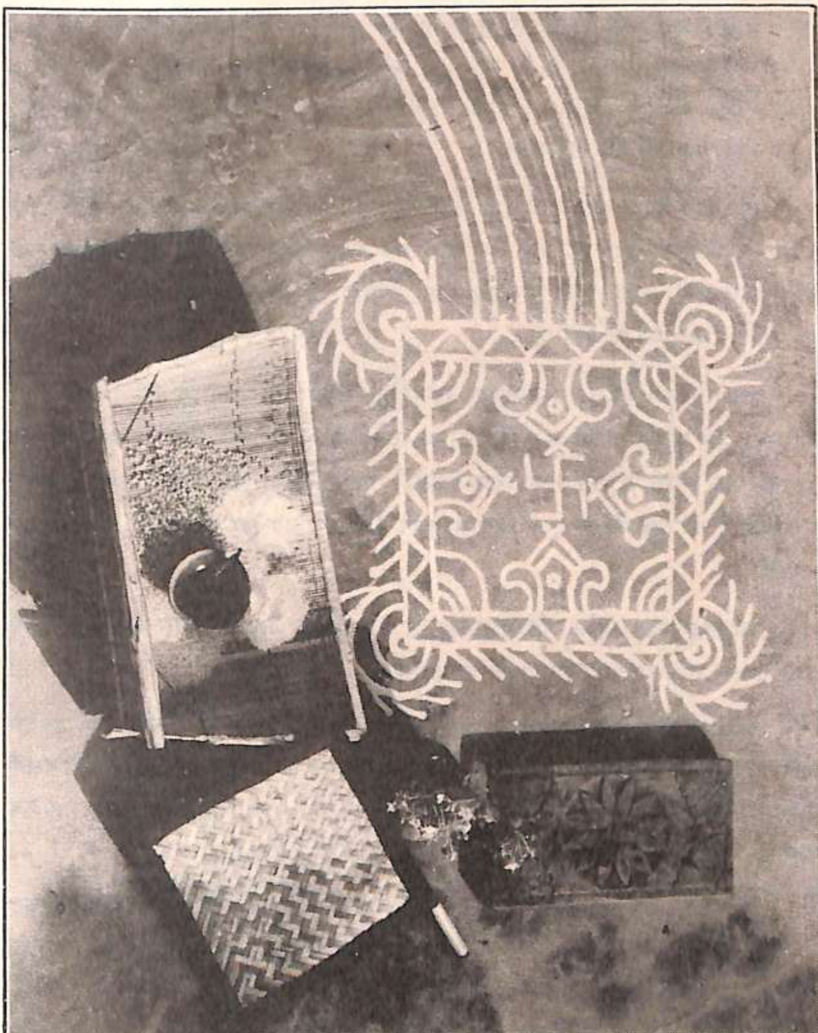

चित्र नं. 2 : सूर्य पूजन का रश्मी पथ

2454
11650

वही देवर पहले सात बार इधर से उधर डड़िया नांघ लेता है और परिपथ को अनवास देता है तब उसकी भाभी गोद में बच्चा लेकर उसी पथ वीथी से निकल कर आती है।

इसके लिये देवर का नेग होता है जो 'सूरज पुजाई' या 'बंसी बजाई' का नेग कहलाता है।

देवर जो आवें सूरज पुजावें

उनहूं को नेग दे देना, मेरे भोले राजा

बंसी तो बाजी

बंसी तो बाजी, मोरे रंगमहल में

इस समय सिंगार करने वाली नाइन महावरी रंग के पाँच सतियों से सजे बाँस के पंखे से जच्चा के सर पर छांव किये रहती है। चौक तक आ जाने के बाद उसी चौक पर खड़े होकर सूर्य की पूजा करवायी जाती है। आखत (धुले चावल के अक्षत) फेंके जाते हैं और वहीं बच्चे समेत सात बार घूम कर सूर्य की प्रदक्षिणा की जाती है।

अवध के पूर्वी अंचल में (सुल्तानपुर, प्रतापगढ़) में कन्या जब कुमारी से गौरी होती है (7 वर्ष की आयु होने पर) तो उसकी मांग निकालने का छोटा मोटा उत्सव किया जाता है। आंगन में चौक डालकर एक पटली पर लड़की को बिठाकर उसकी भाभी या बुआ कंघी से पहले पहल सीधी मांग निकालती है और पीछे बैठकर फूलों से चोटी गूंधती हैं। इस अवसर पर गीत होते हैं व बताशे बांटे जाते हैं।

इस तरह मुण्डन, जनेऊ और विवाह संस्कार में अवसर के अनुकूल सुमंगल चौकें डाली जाती हैं ये सुमंगल चौकें मुख्यत : पांच प्रकार की होती हैं :-

1. मंगल चौक :- यह अवध में प्रत्येक शुभ अवसर पर डाली जाने वाली अति प्रचलित चौगिरही चौक है। समानान्तर रेखाओं से बने वर्ग के चारों कोनों पर समानान्तर रेखाओं से गांठें बनायी जाती हैं और फिर कुछ सजावट के साथ उसे अन्तिम रुप दे दिया जाता है। जन्मदिन या पूजा अवसरों पर प्राय : इसी चौक का प्रयोग किया जाता है (देखें चित्र नं.3)

2. कमल चौक :- आठ कली की यह चौक मंगल चौक के अन्तर्गत आती है और अधिकतर अवध के गंगा तट के पश्चिमी क्षेत्र में बनायी जाती है। इसमें पंखरिया गोल भी बनती हैं, सिरेदार भी बनती हैं और फिर पुष्प दलों में समानान्तर रेखाओं तथा बिन्दुओं की सजावट की जाती है। (देखें चित्र नं.4) इस अल्पना का प्रयोग अलग-अलग ढंग से बड़ी साज सज्जा के साथ किया जाता

है। अवध के नगरों में उसका स्वरुप कुछ अल्पना की तरह होता है। दीपावली इस रचना का मुख्य पर्व है।

3. स्वास्तिक चौक :- स्वास्तिक की रचना हिन्दू घरों में प्रणव के बाद पवित्रतम मानी जाती है। स्वास्तिक में भुजायें अगर दायीं ओर उन्मुख होती है तब इसे गणपति के संक्षिप्त संस्करण की संज्ञा दी जाती है। यही भुजायें जब वाम मार्गी होकर उल्टा बनती हैं तो उसे सथिया नहीं समझा जाता, वह हिटलर का निशान है। स्वस्तिक को सूर्य का सम्पूर्ण विस्तार भी समझा जाता है। यहाँ सूर्य केवल मध्य बिन्दु में संग्रहीत है जिससे निकलकर चार भुजायें चारों दिशाओं पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण के चार बिन्दुओं तक पहुचतीं है। इन बिन्दुओं से चार रेखायें निकलकर कोण में स्थित दिशा बिन्दुओं को छूती हैं।

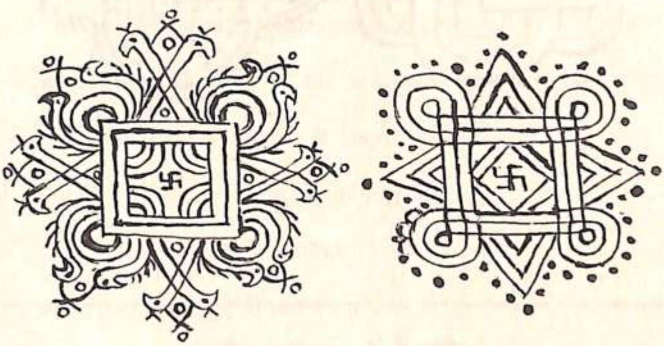

चित्र नं. 3 : मंगल चौक

चित्र नं. 4 : कमल चौक

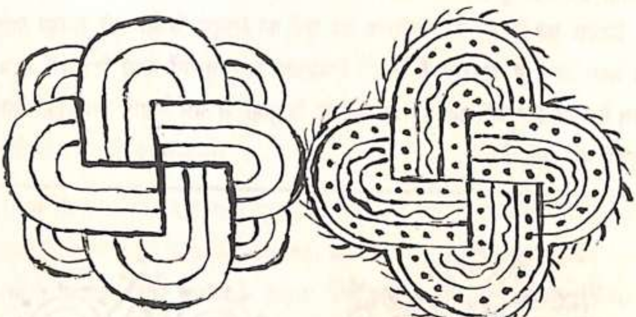

चित्र नं. 5 : स्वास्तिक चौक

ये रेखायें पूर्व से निकलकर अग्नि कोण, दक्षिण से निकलकर नैश्रृत्य कोण पश्चिम से निकलकर वायव्य और उत्तर से निकलकर ईशान बिन्दु तक पहुंचती है। दसों दिशाओं में से केवल यही आठ दिशायें एक तल पर संभव हैं जो यहाँ स्पष्ट होती हैं धरती आकाश नहीं प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

स्वास्तिक की चौक में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अर्थवेद का सूत्र भी समाहित है। इसे अष्टमांगलिक चिन्हों में सर्वश्रेष्ठ संज्ञा दी गयी है जो कि प्राचीनतम पुरावशेषों से प्राप्त होती रहती है। संक्षेप में स्वास्तिक गति, प्रगति तथा मानव मात्र के शुभ कल्याण का प्रतीक है।

स्वास्तिक सरल और शुभ होने के कारण स्वतंत्र रूप से भी रखा जाता है और साज सज्जा में भी प्रयुक्त होता है। इसे लोक भाषा में सतिया कहा जाता है। स्वास्तिक को आधार बनाकर इस चौक का विस्तार कई प्रकार से किया जाता है। (देखें चित्र नं.5)।

4. शंखाई चौक :- अवध की इन मंगल चौकों में चौथी चौक है शंखाही या संखियाही चौक जैसा कि नाम से ही विदित होता है शंख रचना पर आधारित या शंक्वाकार चौक का नाम है।

यहां यह स्पष्ट करना भी होगा कि यह चौक कुल प्रथा से सीधा सम्बन्ध रखती है। पर्व त्योहारों, शुभ संस्कारों में कुल या घरानों की अपनी अलग ही भूमिका होती है। ये वर्गीकरण क्षेत्रगत जातिगत, विभाजन से भी आगे विभाजित होता है।

शंखाई चौक कान्यकुब्ज ब्राहमणों के छ : घर के कुल की अपनी विरासत हैं। यह पूरी धरोहर अवध सरहद पर बहती गंगा केदोनों तटों पर आर-पार मिलती है। इसलिये कला की इस पूरी वसीयत को गंगा पट्टी का नाम दिया जाता है।

गंगा पट्टी के छ : घराने इस प्रकार है :-

1- भगवन्त नगर मल्लावां (जनपद हरदोई) के मिश्र परिवार

2- उगू हफीज़ाबाद (जनपद उन्नाव) के दीक्षित शुक्ल (बाला के सुकुल)

3- जहाँगीराबाद (जनपद बाराबंकी) के तिवारी परिवार

4- खोर-बैसवाड़े (जनपद-रायबरेली) के पाण्डे परिवार

5- सराय मीरा (कन्नौज) के मिश्र परिवार

6- असनी (जनपद फतेहपुर) के बाजपेयी परिवार

यहाँ यह भी बताना समीचीन होगा कि लखनऊ में बाजपेयी (रानी कटरा, लालमण्डी) भी इसी प्रकार अपनी पहचान रखते हैं जिनमें ऊंचे के बाजपेयी और खाले के बाजपेयी अलग-अलग होते है।

इन छ : घरा कुल की बहू बेटियां इस प्रकार के अपने विशिष्ट लोक चित्रों और अल्पना अलंकरणों में बड़ी पारंगत होती हैं।

शंखाही चौक चार कोनों के वर्गाकार से प्रारम्भ होती है जिसके अन्दर स्वास्तिक या अन्य कोई चिन्ह या सहज सज्जा भर दी जाती है।

चौक की अन्तरात्मा तरह-तरह की कामदार बेलों से सजायी जाती है फिर समानान्तर रेखाओं की ज्यामितीय योजना से उनका विस्तार होता है। इसके बाद चारों सिरों से ख़स की पुष्पकली की तरह शंक्वाकार नमूने खीचें जाते हैं जो कमल के खिलते फूलों जैसे सुमन दल से सजे होते है। इनमें आड़ी रेखाओं और छोटे छल्ले मुंदरी की भरत की जाती है।

चारों शंख के बीच चारों अवकाशों में त्रिभुजाकार या फिर अन्य सजावटी नमूने पहना दिये जाते हैं। चौक को सम्पूर्णता देने के लिये सारी रचना की बाहरी रेखाओं पर छोटे–छोटे पुमंगों की पंक्तियां दी जाती हैं जिससे चौक और अधिक खिल उठती है। इस विस्तृत अलंकरण को देखने से ही (देखें चित्र नं.6) मालूम हो जाता है कि इस श्रेष्ठ सज्जा के निर्माण के लिये सुन्दर, सिद्धहस्त उंगलियाँ, लगन और समर्पित श्रम की आवश्यकता होती है।

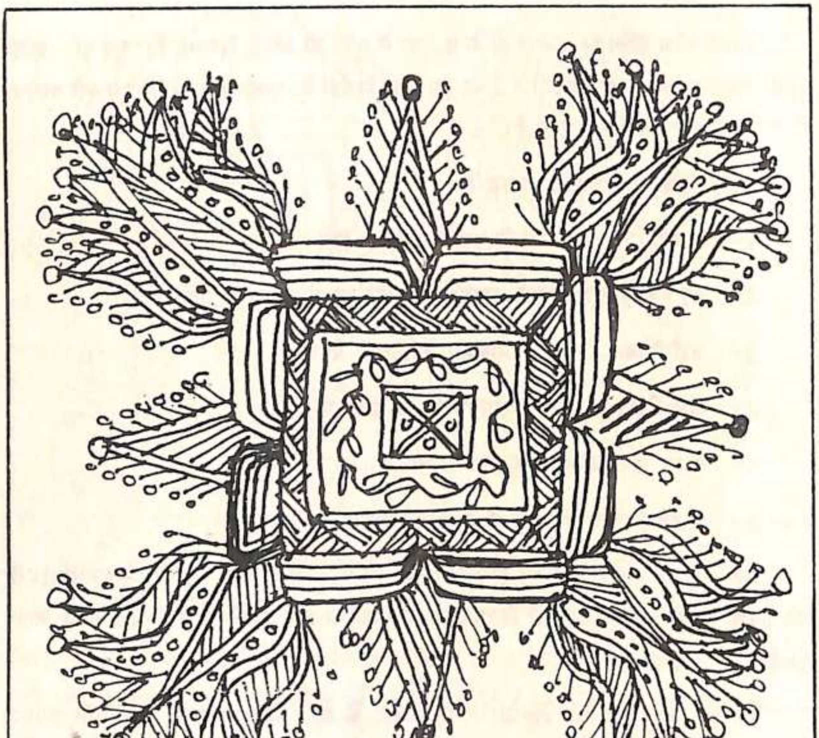

चित्र नं. 6 : संखियाई चौक

गंगा पट्टी की यह संखियाई चौक बड़ी विस्तृत होती है इसलिये पूरी चौक का प्रावधान केवल बड़ी पूजा अनुष्ठानों या ब्याह जनेऊ में ही है। छोटे अवसरों या त्योहारों पर दीवार से लगा कर यही चौक आधे आकार में रख दी जाती है जो आधी चौक कहलाती है।

5. कोड़रा चौक :- (कंगन चौक) अवध में भूमि आलेखनों में कोड़रादार (कुण्डलीदार) चौक सीधी सादी होने के बावजूद अपनी अलग भूमिका रखती है। इस चौक में एक अति छोटे वृत्त के ऊपर बड़े वृत्तों को बारी–बारी बढ़ाते जाते हैं जिनकी संख्या कभी पाँच तो कभी सात होती है। पूस के इतवारों में सूर्य पूजा के लिये बारह वलय भी बनाये जाते हैं।

यह गोलाकार वृत्त सृष्टि की अनंत रचना का संक्षिप्त समीकरण है। ईश्वरीय सत्ता की सम्प्रभुता का संकेत भी है क्योंकि वृत्त का प्रारम्भ और अन्त कहीं कुछ नहीं है। इस प्रकार यह रचना जगत ब्रहमाण्ड का रहस्य रुप है। कहीं–कहीं वृत्त के ऊपर लहरदार वलय भी बनाये जाते है और तब ये वर्तुल परिधि जीवन की लयात्मकता अपने आप में संजोये हुये रहती है। इस गतिमान रेखांकन में मन का पूरा दुख सुख, समय का सारा उतार चढ़ाव परिलक्षित होता है। जब छल्ले पर बढ़ते छल्ले बनते जाते है तो उसे स्त्रियाँ 'मुंदरी–कंगन' कहती हैं और जब ऊपर लहरिया रहती है तो उसे 'बिजली–कंगन' कहा जाता है।

चौक की बाहरी परिधि पर केसर का कंगूरा या बिंदु सज्जा से इस आलेखन को पूर्णता प्रदान की जाती है। यहां बिंदु सम्पूर्णता का प्रयोग है और जो अन्तिम सज्जा के बाद सिंधु को भी समाहित रखने का दावा करता है।

कोड़रादार इस चौक में मोतीदार जड़ाऊ चूड़ियों का आभास मिलता है इसलिये इसे बिजली कंगन की चौक भी कहते है। कहीं–कहीं यह एक ही रेखा से नाग की कुण्डली की तरह भी घुमाते हुये बनायी जाती है। कोड़राई चौकों का सम्बन्ध कोड़रा से भी जोड़ा जाता है। वास्तव में कोड़रा नागवंशियों का एक कुल होता है।

श्रीवास्तव कायस्थों में भी कोड़रा खानदान अपनी एक अलग पहचान रखता है। इनकी वंश परम्परा में एक जनश्रुति के अनुसार नागों का विशेष सम्मान है। इस आधार पर ख़ानदान में बहुओं को अपने सुकृत्य के बदले नाग देवता से वरदान प्राप्त है जो कुल की बेटियों को नहीं मिला है।

अवध में मलिहाबाद (जनपद लखनऊ) इस कुल का मूल स्थान रहा है।

कोड़राई चौक का प्रयोग करवा चौथ पर विशेष कर किया जाता है। इसी प्रकार शीतला अष्टमी, बरगदाही, सकट और हरछठ, जगन्नाथ के सोमवार आदि त्योहारों पर तथा पूजा वेदी के आगे भी यही चौक डाली जाती है।

अवध के मांगलिक अवसरों पर डाली जाने वाली इन शुभ चौकों का विशेष आदर किया जाता है जिसके कुछ नियम भी हैं। जन्म दिन पर चौक बनाकर पहले तो उस पर आखत (कुछ चावल)

डाल दिये जाते हैं। उसके ऊपर पटली डालकर उस बालक को बिठा दिया जाता है, जिसकी सालगिरह होती है। बच्चे के कुल की कोई बड़ी–बूढ़ी उसके सर पर अपना आंचल डाल कर बैठती है। बारी–बारी से सात सुहागिनें आचंल में कोछा (गुलगुले या बताशे) लेकर आती हैं और टीका लगाकर निछावर डालती हैं। बाद में कलावे की एक पिंडी से लड़के को पांव से लेकर सर तक नाप कर दूब लगा कर गांठ दे दी जाती है। इसी कारण इसको वर्षगांठ कहा जाता है। ये कलावे का गोला बढ़ता जाता है और सदा रहता है उस लड़के के विवाह होने तक। शादी के बाद सालगिरह बढ़ा दी जाती है। उस सदस्य केकभी परदेस में होने पर चौक पर चिराग जलाकर रख दिया जाता है और उसकी निछावर कर दी जाती है। कार्यक्रम के बाद एक औरत चौक पर पड़े चावल अपने आंचल से इधर–उधर कर देती है। इसे चौक अचवाना कहते है। यह उस अल्पना को आदर सहित विसर्जित करना है जो घर–आंगन में शुभ–शुभ अवसरों पर आती है।

ब. पर्व त्योहारों के भूमि अलंकरण :

अवध प्रान्त के पर्व त्योहारों में भूमि अलंकरण के प्रसंग चैत मास में नववर्ष से प्रारम्भ हो जाते हैं।

1. होली की दूज :– होली के बाद की दूज यहां के कुछ घरानों में कुलरीत के अनुसार भाई–बहन के टीके का त्योहार है जो लगभग दीपावली की भैया दूज जैसा होता है। इस त्योहार में भी कहीं–कहीं चौक पड़ती है और कहीं–कहीं नहीं भी बनती है। होली दूज की चौक दिवाली चौक की तरह विस्तृत नहीं होती–इसमें कलम पूजा और 'जमुना की चौक' भी नहीं पड़ती है, केवल एक मंगल चौक और कुछ मांगलिक प्रतीक बना दिए जाते हैं।

पूजा के बाद भाई को उसी चौक पर बिठाकर रोचना कर दिया जाता है।

सारे भारत में अष्ट मांगलिक चिन्हों की प्रतिष्ठा है। हिन्दू धर्म की सनातन, बौद्ध, और जैन तीनों आस्थाओ में 'अष्ट' मंगल का समान रुप से महत्व है यह 'अष्ट मंगल' प्रतीक स्वास्तिक, कलश, नाग, चरण, कमल, शंख, सूर्य और चन्द्रमा है।

अवध के सभी त्योहारों और संस्कारों पर यह शुभ प्रतीक कुछ हेर–फेर के साथ बनते हैं।

2. आखातीज (अक्षय तृतीया) :– यह प्राचीन पर्व वैशाख शुक्ल तृतीया को मनाया जाता है। इसे सतयुग और त्रेता युग के प्रारम्भ का दिवस और परशुराम जयंती मानते हैं। इस दिन ठाकुर जी में चंदन चौक डाली जाती है जो आटे या ऐपन से रखी जाती है।

वैष्णव घरों में भगवान विष्णु की पूजा आरती होती है। इस दिन भगवान को विशेष रुप से चंदन चढ़ाने की प्रथा है।

यह त्योहार पहले की अपेक्षा अब बहुत कम मनाया जाता है। इस पर्व की एक महिमा यह भी है कि इसी दिन बद्री नारायण धाम के पट खुलते है।

आखा तीज को ही वृन्दावन धाम के बांके बिहारी मंदिर में भगवान के चरण दर्शन मिलते हैं वर्ष में केवल एक बार।

3. वट सावित्री पूजा और हरछठ :- जेठ मास की अमावस्या को लगभग सारे अवध में वट सावित्री पर्व मनाया जाता है। वट वृक्ष हमारी संस्कृति का प्रबल प्रतीक है। इसमें ब्रहमा, विष्णु और महेश तीनों का निवास माना जाता है। सुहागिन स्त्रियां सावित्री के सम्मान में तथा अक्षय सुहाग की कामना के लिए यह व्रत पूजन करती हैं और बरगद के वृक्ष की फेरी देती हैं।

मध्य युगीन शासन में शहरों की स्त्रियां घर से बाहर कम ही निकलती थीं इसलिए इस पर्व को आंगन में ही मनाने की प्रथा चल पड़ी। इस दिन घर के पुरुष बरगद की टहनी बाहर से लाकर एक गमले में रोप देते हैं जिसके चारों ओर बैठ कर औरतें पूजा करती हैं। इस समय ऐपन चढ़ी हांडियों में पुजापा भरा होता है जिन्हें सुहागिन स्त्रियां आपस में बदलती भी हैं। इन हांडियों के नीचे एक-एक कोड़राई कंगन चौक ओर गौर के नीचे सतियाई चौक पीले ऐपन से डाली जाती है।

प्रायः सारे अवध में भाद्रपद कृष्ण षष्ठी को हरछठ का त्योहार मनाया जाता है। यह त्योहार पुत्रवती स्त्रियां करती हैं। इस अवसर पर एक प्रसिद्ध भित्ति आलेखन तो होता ही है, आंगन में मिट्टी से "सगरा" (बाबा का सागर) भी बनाया जाता है जिसके किनारे-किनारे ढाक कुश का झुण्ड लगा दिया जाता है इस कच्चे ताल के पानी से माताएं अपने पुत्र का मुंह धुलाती हैं।

इस तालाब के चारों ओर ऐपन से लहरिया खींच कर बिन्दियां रखी जाती हैं। जिस स्थान पर दीवार में हरछठ लिखी हुई होती है वहां से सरोवर तक ऐपन से छः लकीरें खींच दी जाती हैं और इस संरचना को "सरावर" कहा जाता है। अब सरावर खींचने की प्रथा बहुत कम घरों में मिलती है।

4. दशहरे की चौक :- अवध में आश्विन मास शुक्ल पक्ष की शारदीया नवरात्रि के बाद विजय दशमी का पर्व बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है। रामलीला के प्रधान प्रसंग रावण वध का आयोजन होता है। इस दिन नीलकंठ का दर्शन बड़ा शुभ माना जाता है जिसे दिखाने के लिए बहेलिए शहरों में घूमते हैं।

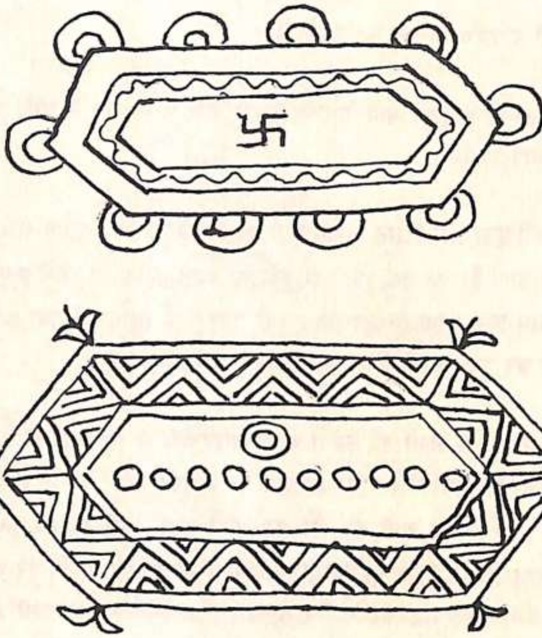

दशहरे की चौक

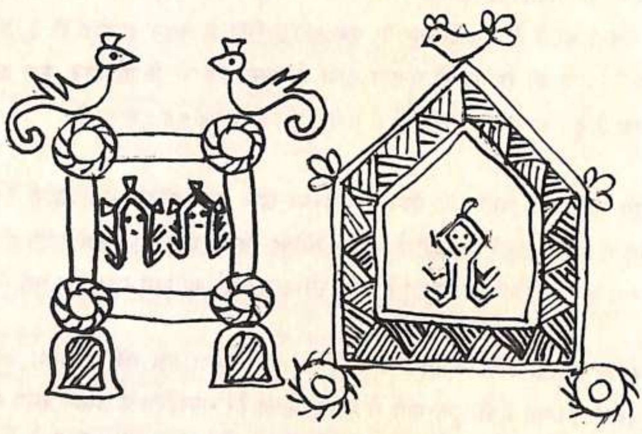

डिठवन एकादशी का पलंग और पालना

चित्र नं. 7

घरों में स्त्रियां दशहरा पर्व की सुन्दर चौक आंगन में डालती हैं। यह चौक सुनहरे ऐपन से बनती है इसमें ज्यामितीय संरचना का एक लम्बा षटकोण बनाया जाता है। जिसे समान्तर रेखाओं से लहरियों से या फिर लौंग टकी गिलौरीदार गोट से सजाया जाता है– ये चौक कहीं–कहीं आटे से भी डाली जाती है। बाहरी सज्जा केसर के कंगूरों या आड़ी कंघी से की जाती है।

चौक के भीतरी घेरे में एक सतिया पर गोबर से नयी गौर रखी जाती है और उसके आस–पास दस उपले रखे जाते हैं। कहीं–कहीं ये उपले चौक के बाहर बनी दस गांठो में रखे जाते हैं। गोबर के ये दस पिंड रावण के दस सिर की संज्ञा बनते हैं जिन पर तरोई के फूल रख दिए जाते हैं। ये पीताम्बरी पुष्प परमेश्वरी सत्ता के प्रतीक हैं जिनके वे दस पिंड आधीन होते हैं। दशहरे की नयी गौर से औरतें पीले सिंदूर से सुहाग लेती हैं जो सीता के सतीत्व का स्मरण है। ये गौर साल भर पूजा पाठ में सुहाग लेने के लिए सुरक्षित रख ली जाती है।

दशहरे की चौक में रावण के सांकेतिक चित्रण किए जाने के साथ ही अवध के एक लोक गीत का ध्यान आता है। अयोध्या के आंगन में बैठी सीता बहुत मना करने के बाद अपनी ननद शान्ता के अति आग्रह पर विश्वास करके रावण का चित्र धरती पर खींच रही है फिर वही कुटिला ननद राम को आमंत्रित करती है कि वे आयें तथा स्वयं देखें कि उनकी पत्नी क्या कर रही है और फिर यही प्रसंग जानकी का दुखद प्रारब्ध बन जाता है। इसे एक अवधी सोहर की भूमिका में देखिए :–

आंगन ननद भौजइया, चौपर मिलि खेलहिं हो

भौजी जौने रवन तोहे हरिले, उरेहि देखावहु हो

जो मैं रवना उरेहऊं उरेहि देखावहुं हो

सुनि पइहैं बीरन तोहार, तो घर से निकारहिं हो

देउं दुहइया राजा दशरथ, बिरन राम जी की हो

भौजी लाख दुहइया भइया लछमन, कि नाहिं बतइहो हो

पीसउ पुरब के चाउर कि सरजू के पानी हो

ननदी अंगना गोबर से लिपावहु, मैं रवना उरेहउं हो

अंगुरी चलावें रानी सीता–सो रचि रचि खींचइं हो

रामा सिरजइं हाथ और पांव–सो नयन बनावइं हो

5. कार्तिक के भव्य पर्व अलंकरण :- अवध में कार्तिक मास- धरा अलंकरण के सन्दर्भ में सब महीनों का सरताज है। इस मास में आंगन में बड़ी-बड़ी चौकें पड़ती हैं और ये सभी आलेखन उजले ऐपन (बिना हल्दी के) से लिखे जाते है जो शरद रितु के निर्मल स्वभाव के विशेष अनुकूल मालूम होते हैं। जैसे झलकते जल में कोकाबेली (कुमुदनी) के फूल खिल उठे हों। इस पूरे मास के लिए यह मशहूर है कि औरतों के दायें हाथ की अनामिका का नाख़ून गहरे तक घिस जाता है क्योंकि रचना प्रक्रिया में इसी उंगली का सब खेल होता है।

करवा चौथ :- कार्तिक का पहला पर्व करवा चौथ है जिसकी विशेष सज्जा भित्ति अलंकरण है लेकिन बहुत स्थानों पर करवा आंगन, मैदान या छत पर ही चांद के सम्मुख पूज लिया जाता है। बहरहाल दोनों ही स्थितियों में छत पर या करवा आलेखन के आगे बिजली कंगन की चौक डाल कर उसी पर ऐपन लगा कांसे का या मिट्टी का करवा रख कर पूजा जाता है। छत पर की चौक के साथ चन्द्रमा तथा कुछ अन्य प्रतीक भी लिखे जाते हैं।

अवध के पूर्वी क्षेत्र गोण्डा, फैजाबाद, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़ में करवा चौथ का त्योहार बहुत कम होता है और जहां कहीं होता भी है ज़मीन पर चौक डाल कर ही पूजा जाता है। अब यह बात और है कि पुराने समय से कुछ स्थानान्तरित लोग उसे अपनी रीति के अनुसार मनाते हों या लिखते भी हों।

दीपावली :- दीवाली ज्योति का पर्व है, लक्ष्मी पूजा का पर्व है। इसमें घर की सफ़ाई सजावट के साथ साथ अलंकरण की परम्परा भी है। कहीं दीवाली दीवार पर लिखी जाती है तो कहीं आंगन में कमल चौक डाली जाती है, कहीं द्वार देहरी पर फूल बूटे बनाए जाते हैं तो कहीं आधी रात को दरवाजे के अन्दर दहलीज में ऐपन से सात चरण लक्ष्मी आगमन की मुद्रा में बनाए जाते हैं इन चरण चिन्हों में विशेष बात यह होती है कि पहला चरण बायां रखा जाता है जो स्त्री के वाम प्रकृति की पहचान हैं। कहीं-कहीं लक्ष्मी पूजा की रात बीच आंगन में अष्टदल कमल की विस्तृत चौक रखी जाती है। कमल कमला का आसन है। गगन से देवी का पर्दापण हो तो वे अपना आसन ग्रहण करें और उस गृह को अनुग्रहीत करें। यही भाव भरी भावना इस अलंकरण के पीछे है। इस सन्दर्भ में एक लोक कथा कही जाती है जिसमें लक्ष्मी महल अट्टालिकाओं की तरफ न मुड़ कर अकिंचन के आंगन में उतर कर एक दीन दुखियारी का अर्घ्य स्वीकार करती हैं क्योंकि उसने अपना आंगन लीप कर आठ कलियोंदार कमल की चौक डाली थी।

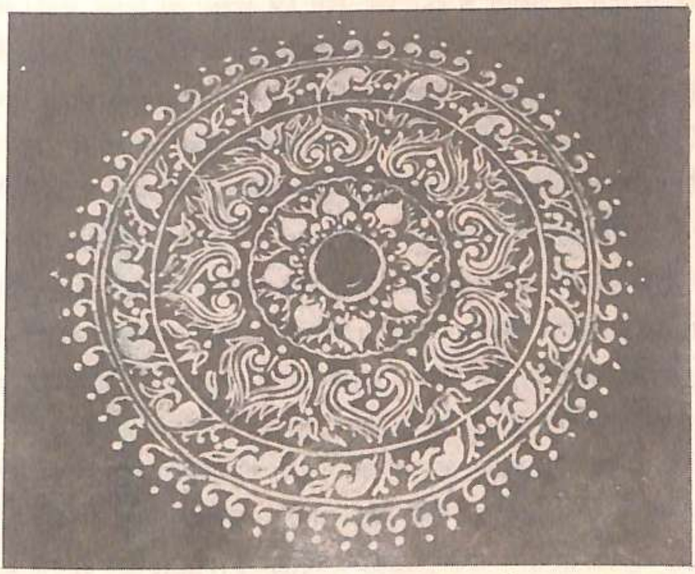

दीपावली की अष्टकमल अल्पना (नागरी शैली)

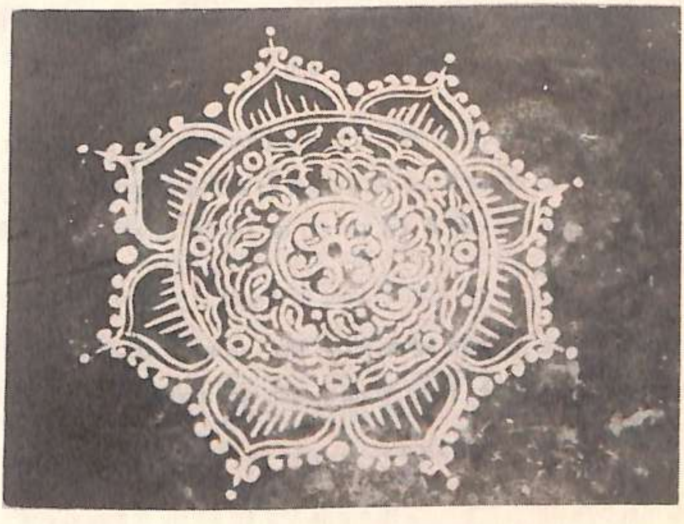

दीवाली की कमलदल चौक (नागरी शैली)

चित्र नं. 8

गोवर्धन पूजा :- दीवाली के दूसरे दिन, जिस दिन अन्नकूट का त्योहार मनाया जाता है भगवान के भोग के छत्तीस व्यंजन के नाम पर बहुत तरह की सब्जियां आपस में मिला कर छौंक दी जाती हैं। इस दिन इन सब्जियों की मिली जुली डलिया बाजारों में बिकती है। लड़के ख़ूब पतंग उड़ाते हैं और जमकर जमघट मनाते हैं। सुहागिन स्त्रियां इस दिन गोधन रखती हैं और 'चिरैया गौर' करती हैं। यह अवध का अपना अलग त्योहार है। कुशल महिलाएं अपने कुल की स्त्रियों से सीखे गए ढंग से गोबर से गोवर्द्धन पूजा का पूरा का पूरा प्रकरण रचती हैं। चारों तरफ मुंडेर उठाकर सामने एक द्वार बनाती हैं। रचना के बीच मानवाकार में श्री कृष्ण का प्रतिरूप रखती हैं जिसमें कौड़ियों से नैन बनाए जाते हैं। गोवर्द्धन पर्वत बनाया जाता है। चारों तरफ कूटनहारी, पीसनहारी ओखली, मूसल, चकिया, मथानी, गाय, भैंस, गोठ, गिरस्ती सब बनाया जाता है। इस तरह की संरचना पश्चिमी और केन्द्रीय अवध में ही बनते देखी गयी है। सीतापुर, बहराइच में गोबर का बैठा हुआ पुतला बनाया जाता है। पूर्वी अवध में यह पर्व इस तरह नहीं देखा गया है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश की सांझी जैसे इस अलंकरण को नए कपास, करवे की सीकों, खीलों और सिंदूर से सजाया जाता है। करवे के चावल जो दीवाली की रात लक्ष्मी के चरणों में रखकर जगाए जाते हैं भिगो दिए जाते हैं। उसी की पित्री से एक छोटी सी चिड़िया बनती है जिसकी चोंच में नन्हीं सी घी की बत्ती बनाकर जला दी जाती है। बुझने के बाद बुझते–बुझते ही व्रत रखने वाली और पूजा करने वाली औरतें उसे खा जाती हैं। यही पूजा का समापन है। इसे सुहाग का त्योहार भी माना जाता है।

गोधन पूजा की शाम गोधूलि में स्त्रियां ये सारा सजावटीआयत समेट कर एक पर्वत बनाती हैं जिस पर सीकें लगा कर दरवाजे के एक ओर रख देती हैं। दीवाली के दियों में से बचा हुआ एक दिया तेल भरकर जलाकर उसी पर्वत में कुछ कुछ दबा कर रख देती हैं। यही पहचान होती है कि उस घर में यह त्योहार हुआ है।

भइया दूज :- अवध की सबसे अधिक विस्तृत चौक, भइया दूज की चौक होती है जिसमें सात भाई और एक बहन बनती है। सताना के नाम से जानी जाने वाली यह बहन भाई दूज की पर्व कथा का प्रमुख पात्र होती है।

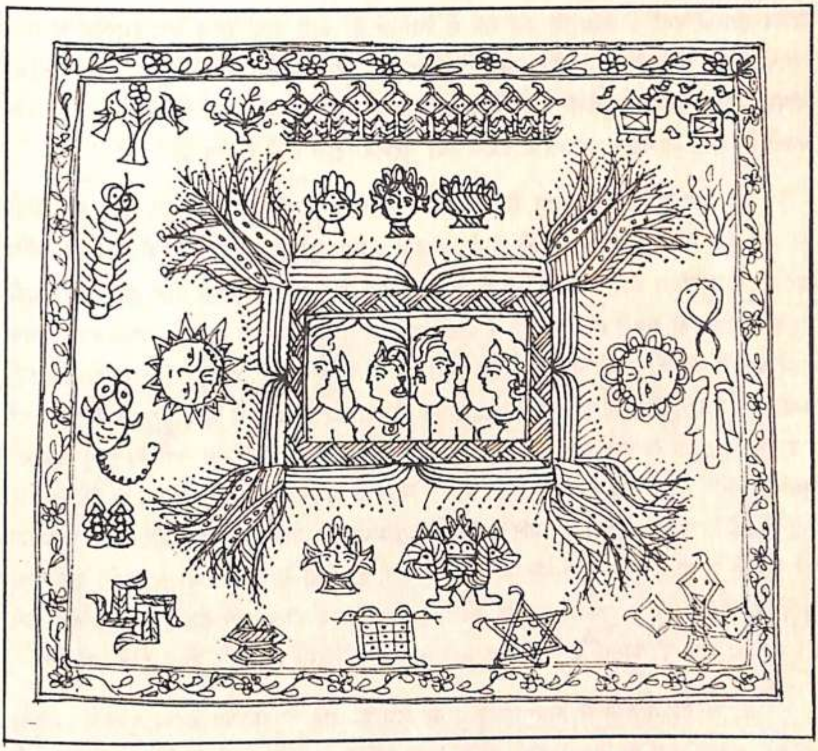

चित्र नं. 9 : भइया दूज की चौक (छः घरा शैली में)

इस चौक में, अष्ट मंगल के अतिरिक्त तुलसी, आंवला, ईख, कमल, सुपारी, चौपड़, पानदान, पिटारी, सुहाग का सामान, पलंग, गंगा जमुना, धनुषवाण, छत्र, खड़ाऊं, तख्ती, बुदका, कलम, दवात, साँप, बिच्छू, खनखजूरा, सगुन चिरैया आदि अनेक विषय हेर–फेर के सात बनते हैं। चौपड़ का चित्रण दीपाँवली पर जुएं के प्रचलन का प्रतीक है लेकिन दूज के दिन बनने वाली इस चौपड़ के साथ चार जुआरी भी बनाये जाते हैं जिनकी चुटिया चौपड़ में बंधी रहती है। उसका संकेत यह है कि दूज पूजा के साथ ही जुआ खेलना बंद है। इस पूरे सज्जा समूह के बाहर–बाहर एक बेल बनायी जाती है। लहरियों, तिकोनी, गिलौरियों, आम की केरियों, शीशम की पत्तियों, फूलों, चिड़ियों वाली बेल या आड़ी कंघी की बेल इस अलंकरण की विशिष्ट बेलें होती हैं।

गंगा पट्टी वालों में भाई दूज की चौक अत्यन्त कलात्मक होती है और अपनी विशिष्ट चित्रांकन शैली से अलग पहचान रखती है। चौक के भीतरी भाग में संखाही चौक की आयताकार रचना की जाती है और जिसमें भाई बहन का चित्रण दूज का टीका करते हुए किया जाता है। ऊपर 9 पुतले

विशेष ढ़ंग से बनते हैं जैसा कि उस क्षेत्र में प्रचलित है। चारों तरफ सूरज चांद (सम्पूर्ण चन्द्रमा) नाग–नागिन, सांप–बिच्छू, सपछप कांट, कनखजूरा, सियाऊमाता, गंगा जमुना, सगुन चिरैया चौपड़, तारा, सतिया, तुलसी सातो थापें आदि अनेक रचनाएं रखी जाती हैं। बाहर फूलदार बेल बनती है। सारा आलेखन अत्यन्त आकर्षक तथा सुदर्शन होता है (देखे चित्र 9)

दूज पूजा के स्थान पर आम तौर से मंगल चौक डाली जाती है जिसके ऊपर मुख्य पूजा होती है। इस पूजा में लड़कियां भाइयों की दीर्घायु कामना के लिए धुने हुए कपास की पूनी को खींच–खींच कर अंगूठा तर्जनी में रोली लगाकर रुई को बीच–बीच में दबा–दबा कर केसर मोती की माला बनाती हैं। इसके साथ ही अपनी हथेलियों की पीठ पर रोली का सतिया भी बना लेती हैं। माला बनाते समय बहनें बोलती नहीं हैं। उनकी मान्यता है कि इससे भाई की आयु कम हो जाएगी। इस माला की पगड़ी बनाकर और उस पर हल्दी चूना से बने हुए रोचने को रख कर वे चौक में खिचे हुए पुतलों के सर पर रख देती हैं। पूजा के बाद इसी रोचने को उठाकर भाई के टीके के लिए रख लेती हैं। दूज चौक की मुख्य चौक पर मूसल रख कर पूजा जाता है। इस चौक को जमुना चौक कहते हैं। इस पर बेरी के कांटे रखे जाते हैं जिनको बहनें भाई के उन्नति मार्ग का कांटा समझ कर तोड़ती जाती हैं और उसकी सफलता की कामना करती है। इन कांटों को मुंह से भी छुआती हैं। पूजा के बाद चौक पर रखी एक मध्य युगीन लखौरी ईंट और सुपारी। मूसल को सात बार घुमाकर अंतिम और एक ही वार से तोड़ देती हैं। भाई को टीके की मिठाई के साथ दिए जाने वाले पान में इसी सुपारी के दोहरे डाले जाते हैं।

भाईदूज चित्रवंशियों में चित्रगुप्त पूजा का दिन भी होता है इसलिए कलम पूजा का विधान भी है। कलम पूजा के लिए विशेष रूप से स्वस्तिक की ऐश्वर्यवान चौक डाली जाती है जिसमें समानान्तर रेखाओं के सुन्दर घुमाओं का विशिष्ट आकर्षण होता है। दीवाली की रात लक्ष्मी पूजा के साथ ही किताब और कलम बंद कर दिये जाते हैं। कदाचित यह इसलिए होता है कि लक्ष्मी और सरस्वती एक दूसरे से पूरब–पश्चिम हैं बीच में जमघट का दिन पूरे उमंग, उल्लास और निश्चिंतता से मनाया जाता है तथा दूज के दिन कलम पूजा के साथ ही लिखा पढ़ी के सारे कारोबार पुनः प्रारम्भ कर दिए जाते हैं।

भइया दूज (गोबरही) :- अवध के सारे पूर्वीभाग गोण्डा, फैजाबाद, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़ आदि ज़िलों में गोबर से ही भइया दूज रखी जाती है। इनमें गोण्डा जनपद में मिश्रित परम्पराएं देखी जाती है। वहां कुछ क्षेत्र में ऐपन से चौक रखने का भी रिवाज है।

'गोबर दूज' खुली छत पर एक वर्गाकार आयत में रखी जाती है। बाहरी बेलदार परकोटे में चार दिशा में चार द्वार बनते हैं जिन पर सांप बिच्छू बने होते हैं। इस कलापक्ष योजना के बीचों बीच दो पुरुष आकार कहीं कहीं समानान्तर और कहीं कहीं एक दूसरे की विपरीत दिशा में रखे जाते हैं। इनमें

जो पूजा की दिशा के अनुसार होता है उसे धर्मराज तथा उलटे को यमराज कहा जाता है। चौक में सिंदूर सजी गौर (गौरा पार्वती का प्रतीक) सुहाग लेने के लिए रखी जाती है। रचना विस्तार में भाई बहन, भाभी, नैयावाली, साँप, दिया और चारपाई भी बनते हैं। ये सारे विषय भाई–दूज पर कही जाने वाली एक कहानी के विषय हैं जिसमें कहा जाता है :–

'पिउ खटिया, पिउ छतिया
पिउ के हाड़, जरै सारी रतिया'

(देखें चित्र १०)

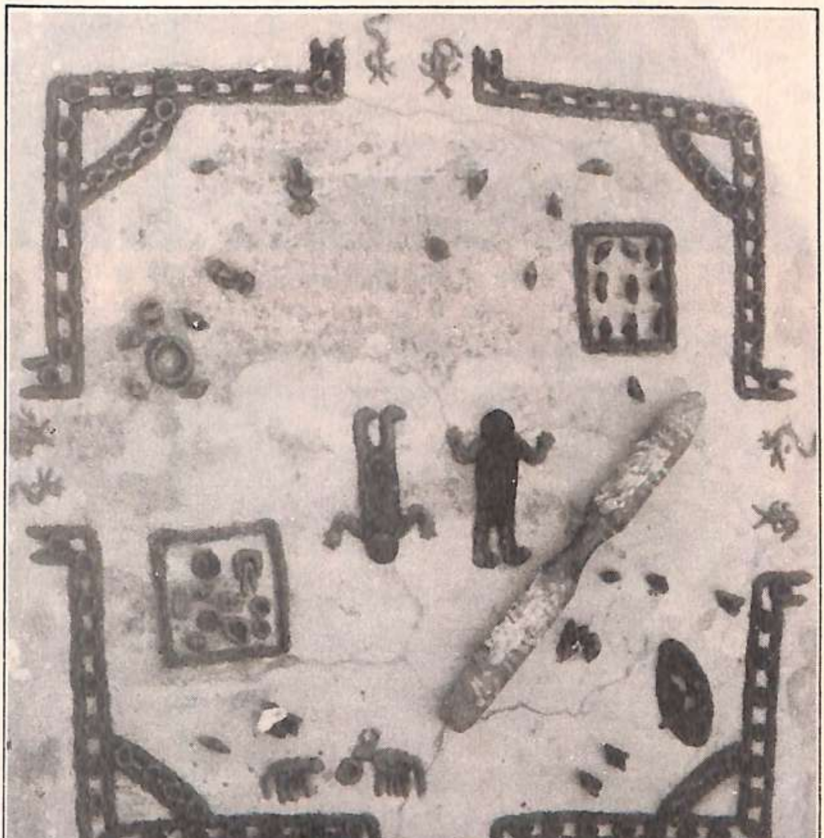

चित्र नं. 10 भइया दूज की गोबरदी चौक (पूर्वी अवध में)

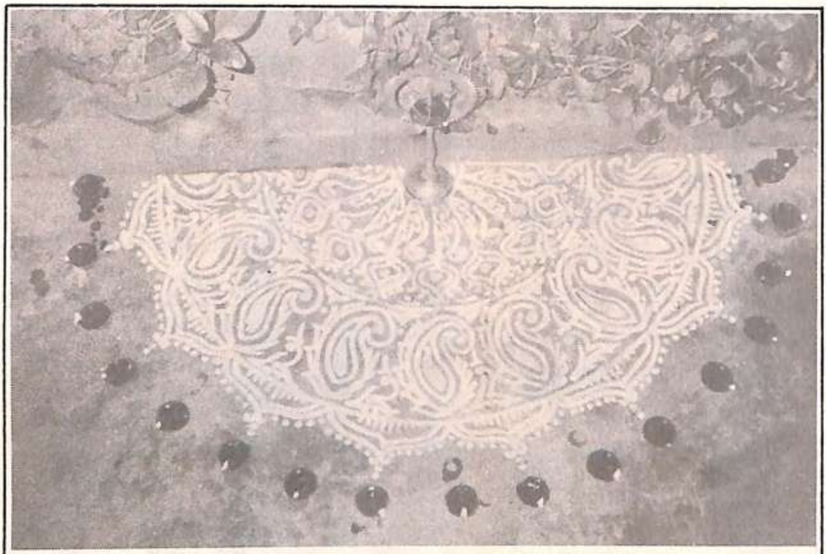

दीवाली की आधी चौक (नागर शैली)

देवोत्थानी एकादशी की चौक (पश्चिम अवध शैली)

देवोत्थानी एकादशी की चौक : अवध के देवोत्थानी पर्व की चौक आमतौर से डिठौनी या नारायणी चौक कहलाती है। अन्य अंचलों की तुलना में यहाँ की ये चौक सबसे अधिक कलापूर्ण तथा भव्य होती है। अवधांचल में ही इसके तमाम तरह के नमूने रखे जाते हैं परन्तु उनकी मूल आत्मा एक होती है। लखीमपुर इलाके की चौक और रायबरेली उन्नाव जनपद के अधिक संयुक्त भूभाग, 'बैसवारें' की ऐपन रचना में बड़ा अंतर है। इसी तरह पूर्वी अवध तथा पश्चिमी अवध में भेद है। डिठवन की चौक से अवध में बहू–बेटियों की गुनागरी और कलाप्रियता की परीक्षा की जाती है।

अवध की एक लोक कथा है कि एक राजा के उपवन में बड़े रंग–सुरंग फूल खिलते थे। जूही, चमेली, केतकी, कुन्द, कमल, पलाश, मंदार, कनक–चम्पा के फूलों से बगिया दिन रात महकती रहती थी। यहाँ तक कि देवताओं के राजा इन्द्र को अपना नन्दन वन उसके आगे नहीं भाता था और वह रात के पहले पहर में चुपके से आकर उतरते थे और कुछ फूल चुन कर ले जाते थे। राजा बड़े दुखी थे कि भला कौन आता है जो बगिया से सुन्दर–सुन्दर फूल उतार कर ले जाता है। एक दिन उन्होंने बाग के चारों ओर अनेक जोतें जलवा दीं कि फूल चोर देख लिया जाए और पकड़ लिया जाए। हुआ यह कि राजा इन्द्र अपना विमान लेकर नित की भांति रंभा समेत उतरे। उस बाग के बीच में एक बैंगन का बिरवा था। राजा इन्द्र एकादशी का व्रत थे। उस झुटपुटे में बैंगन का फूल तोड़ लेने से उनका व्रत टूट गया और अब उनका विमान वहीं का वहीं बैठ गया, उड़ने का नाम ही न ले।

चित्र नं. 11 : देवोत्थानी एकादशी की नारायणी चौक

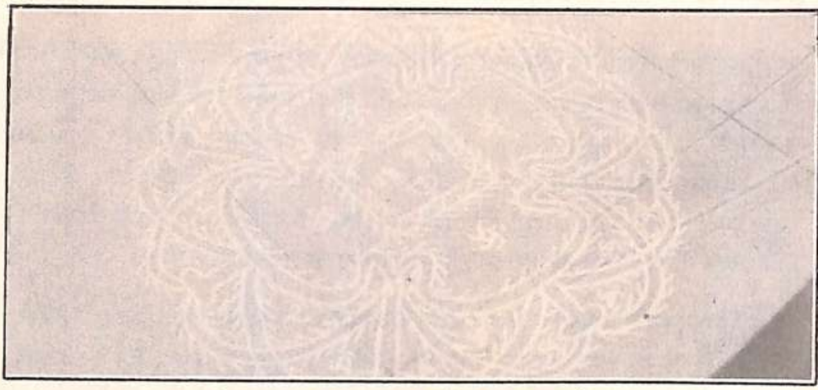

चित्र नं. 12 : देवोत्थानी चौक (पूर्वांचल शैली)

तब देवराज ने राजा से कहा कि अगर उनके राज में कोई एकादशी रखे हो और वह उनका विमान आकर छू ले तो विमान उड़ जाएगा। संयोग से उस राज में कोई एकादशी का व्रत नहीं रखता था इसलिए कोई मिला ही नहीं। तब एक धोबिन को लोग लेकर आ गए। उसका अपने धोबी से झगड़ा हो गया था और जो इसी कारण सारा दिन से रात होने तक भूखी पड़ी थी। उस अन्जान की एकादशी उपासी पड़ी धोबिन ने जो बाएं पैर से विमान छू दिया तो वह रंभा और इन्द्र को लेकर उड़ चला।

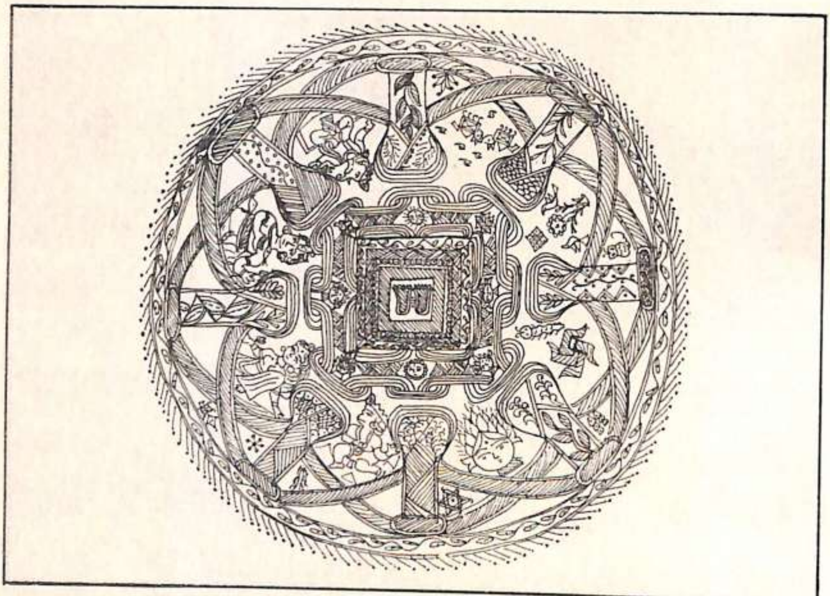

चित्र नं. 13 : देवठानी एकादशी की चौक (गंगा पट्टी-कान्यकुब्ज ब्राहमणों में)

तो भई अनजाने की एकादशी का जब यह फल हुआ तो जो विधि से व्रत करेंगे उनका कितना पुण्य होयेगा ये जानो।

अवध में इसी लोककथा के आधार पर एकादशी के दिन धोबी या धोबिन का सामना मना है कहते हैं ऐसे में इस व्रत का पुण्य भाग उनको अनायास मिल जाता है क्योंकि वे इसके पहले अधिकारी हैं लेकिन अगर ऐसा हो ही जाता है तो पैसा देकर पुण्य उनसे वापस ले लिया जाता है।

वर्ष भर में चौबिस एकादशी होती हैं और अगर मलमास जुड़ जाए तो छब्बीस पड़ती है। इन सब के अलग–अलग नाम हैं। अलग–अलग इनका महत्व है, लेकिन सारी एकादशियों की सिरमौर है देवोत्थानी एकादशी जिसे डिठवन एकादशी भी कहा जाता है। इसका दूसरा नाम प्रबोधिनी एकादशी भी है और यही एकादशी की जन्म जयन्ती भी है।

प्रबोधिनी एकादशी की कथा :– एक बार जब मुर दैत्य ने देवताओं को बहुत पीड़ित किया तो भगवान विष्णु ने उनसे युद्ध करने की ठानी। उस बलवान ने भगवान से बहुत दिनों तक मल्ल युद्ध किया और जब मुर पराजित होने लगा तो उसने एक नई चाल खेली। कहा कि मैं थक गया हूं क्यों न कुछ दिन विश्राम कर लें हम दोनों और उसके बाद नए उत्साह के साथ हम लोग फिर से लड़ेंगे।

जब मुर चला गया तो नारायण हेमवती कन्दरा में विश्राम करने चले गए और सो गए। दैत्य तो इसी ताक में था ही। अवसर पाते ही आ धमका और नारायण पर आक्रमण कर दिया। ऐसे में परमेश्वर के शरीर से उनकी चेतना शक्ति का अवतरण हुआ और उसने मुर का संहार कर दिया। भगवान ने जब आंख खोली तो उस शक्तिमयी दिव्या को देखा। यह कार्तिक शुक्ल पक्ष की एकादशी ही थी इस लिए उस देव कन्या को 'एकादशी' का नाम दिया गया और इसी दिन भगवान जगे थे इसलिए इसे प्रबोधिनी एकादशी कहा जाने लगा।

देव जागरण की बेला :– पुराणो के मतानुसार मनुष्य लोक का एक वर्ष ब्रहम लोक के एक दिन के बराबर होता है जिसमें आठ मास का दिन तथा चार मास की रात होती है। देव रात्रि अषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की हरिशयनी एकादशी से प्रारम्भ होती है।

शंकासुर दानव का वध करके भगवान विष्णु इसी बेला में क्षीर सागर पर सजी शेष शैया पर सोने के लिए गए थे। भगवान विष्णु तथा सारे देवता इसी दिन सोने चले जाते हैं इसलिए इसे देवशयनी कहते हैं और फिर चार मास बाद जब कार्तिक की उजियाली एकादशी को देवता जागते हैं तो वह देव उत्थानी कहलाती है।

इस चातुर्मास में सूर्य के मेघाछन्न होने और फिर मेघमुक्त होने का रुपक भी बंधता है। इस अवधि में प्रायः हिन्दुओं में शादी ब्याह मुण्डन या उपनयन संस्कार जैसे मंगलकृत्य नहीं किए जाते क्योंकि

हिन्दू विवाह में अग्नि वेदी पर साक्षी के लिए देवताओं की उपस्थिति अनिवार्य मानी जाती है। यही कारण है कि शारदीया नवरात्रि में जब दुर्गापूजा की जाती है तो पहले उन्हें जगाया जाता है और उसे अकाल "बोधन" पूजा कहा जाता है।

चौकरचना :- इस चौक में पहले एक वर्ग में विष्णुपद बना लिये जाते हैं। अक्सर किसी बच्चे की बन्द मुट्ठियों के आधार में ऐपन लगाकर चरणाकंन किया जाता है और फिर उस पर पांच अंगुलियां बनाकर उसको सही प्रारुप दिया जाता है। कई समान्तर लकीरों से सजायी जाने वाली यह चौक चक्रवृद्धि ब्याज की तरह बढ़ती जाती है। प्रारम्भ में चार गांठें बनती हैं जो अगली परिधि में आठ, फिर सोलह, फिर बत्तीस होती चली जाती हैं। लखीमपुर से लेकर लखनऊ, बाराबंकी, रायबरेली आदि जनपदों में थोड़े बहुत अन्तर के साथ यह इसी प्रकार बनती है। समान्तर रेखाओं से सजे षटकोणों और उनके साथ चलते हुए चापों से इस चौक का अलंकरण बड़ा भव्य हो जाता है। कार्तिक की सभी चौकें कोरे ऐपन से बिन हल्दी के डाली जाती हैं इसलिए उजली-उजली सी जगमगाती रहती हैं।

लखनऊ के पश्चिमी क्षेत्र में नौ समान्तर रेखाओं से सजायी जाने वाली नारायणी चौक का आकर्षण कुछ अलग है। वहाँ इस चौक के साथ ही घर भर में और भी बहुत से आलेखन लिखे जाते हैं। पूजा की जगह पर देवरानी, जिठानी, तीर, कमान और ढाल तलवार लिखे जाते हैं। जहाँ-जहाँ घर के पुरुष सोते हैं वहाँ-वहाँ पलंग बनाये जाते हैं और जहाँ-जहाँ बच्चे सोते हैं वहाँ पालने बनाये जाते हैं। रसोईघर में भोजन करने वालों की गिनती के अनुसार थाली लोटे खींचे जाते हैं तथा भन्डार घर में सतिया रखी जाती है।

पैसे रुपये और बक्सों वाली कोठरी में अशर्फियों का बक्सा बनाया जाता है। ज़ीने पर ज़ंजीरों से बंधे चोर रखे जाते हैं और दरवाज़े पर पहरुवा बनते हैं।

पूरब में सुल्तानपुर की ओर डिठवन एकादशी पर सादी सतियाही चौक बीच आंगन में बनती है जिसमें से एक-एक वीथी (समान्तर रेखाओं से खींची गई पगडंडी) निकालकर घर के सब कमरों की तरफ ले जायी जाती है और कमरे के द्वार पर विष्णु पद बनाए जाते हैं। इस तरह केवल इसी जनपद में अनेक विष्णुपद बनाए जाने की प्रथा मिलती है।

फ़ैजाबाद की चौक में चरण के साथ ही खड़ाऊं और धनुष बाण भी बनते हैं। नावों और छड़ियों का प्रयोग नहीं होता। धनुषाकार में लहरदार धनुष गोलाकार में बनाए जाते हैं और उनकी कांटेदार आड़ी कंघी से सजावट की जाती है। कहीं-कहीं डिठवनी चौक का एक और नमूना देखने को मिला है जिसमें उसका कोई लाक्षणिक स्वरूप नहीं है। बहुत से पुजापे के साथ विष्णुपद रख दिए जाते हैं। सुहाग पिटारी, गंगा जमुना, कांथा यह सारी रचना एक साधारण वृत्त में बनती है। इसमें अष्ट मंगल के साथ सांप, बिच्छू, ईख, सियाऊ, तुलसी आदि बना दिया जाता है।

अवध के ही प्रतापगढ़ और सुल्तानपुर के कुछ क्षेत्र में देवोत्थानी एकादशी पर इस तरह की कोई रचना बनाने का रिवाज नहीं है केवल नया गन्ना रखकर घर में पूजा की जाती है। ईख चूसा जाता है और घर का कोना-कोना स्वच्छ किया जाता है। गाँव में मशालें निकाली जाती हैं। अगली भोर निशान्त बेला में घर की बड़ी बूढ़ी औरत उखौरे (ईख के टुकड़े) से सूप पीट-पीट कर कहती जाती हैं "ईसर आय दलिद्दर जाय" और फिर पुराने सूप को घर बाहर फेंक आती हैं। यह प्रथा कमोवेश में हर तरफ़ प्रचलित है।

देवोत्थानी की चौक का विशद विस्तार गंगा पट्टी के कान्यकुब्ज घरानों में देखने को मिलता है। यहाँ उसका विशिष्ट लोक स्वरूप तो नहीं है लेकिन उसे अत्यन्त कलात्मक बनाने की परम्परा है जिसमें विष्णुपद की मुख्य चौक के चारों तरफ गांठें देकर कलियां निकाली जाती हैं। बीच-बीच के रिक्त स्थानों में मांगलिक प्रतीकों के अतिरिक्त गणेश, हनुमान, शिव-पार्वती आदि देवी-देवता कुछ मधुबनी और कुछ वास्तविक स्वरूपण में बनते हैं जो लोक आचरण की अपेक्षा कलात्मकता के अधिक निकट है। डिठवन की चौक पर सांझ की गोधूलि में चौक की अंतरात्मा में विष्णुपद सजा दिए जाते हैं और मंगल दीप जला दिया जाता है। पुजापे में आंवला, उरद की फली, चने का साग, झरबेरी के बेर और सिंघाड़े का नया नैवेध चढ़ाकर सुहागिनें गौर से सुहाग लेती हैं। घर का मुखिया ईख का अगौड़ा जिसे 'आग' कहते हैं घुटने से तोड़ कर पिछवाड़े या अटारी पर फेंक देता है और गन्ने के टुकड़े तोड़कर चौक के ऊपर आपस में जोड़कर खड़े कर दिए जाते हैं। विष्णुपद दर्शन के बाद उन्हें मूंज की छोटी डलिया से मुंद दिया जाता है। ऐसी मान्यता है कि पूजा के बाद इस रात इस चौक को लांघ लेने वाले कुमार या कुमारिकाएं साल भीतर ब्याह लिए जाते हैं।

अगली भोर में गृहस्वामिनी, तारा रहते स्नान करती है तथा गाय के गोबर से बिना देखे चरण लीप देती है और बाकी चौक पड़ी रह जाती है। इसी डिठवन एकादशी के देवदर्शन के बाद से शुभ संस्कारों का श्री गणेश हो जाता है।

तुलसी पूजा (गंगा स्नान) :- कार्तिक मास की पूर्णमासी अवध में गंगास्नान तथा तुलसी पूजा का पर्व है। इस पर्व का सूत्रपात पूरी तरह एकादशी से हो जाता है। इस पांच दिन के स्नान पूजन समारोह को 'पंचभिक्षा' के नाम से जाना जाता है। डिठवन एकादशी तुलसी और नारायण के विवाह की लग्न का दिन माना गया है। वैकुण्ठ चौदस को तुलसी की छांव में चौदह जलते दिये रखकर तुलसी विवाह अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया जाता है जो अगले दिन पूर्णिमा के प्रभात में सम्पन्न होता है। इस दिन तुलसी चौरा लीप कर मंगल चौक रखी जाती है या फिर कंगन चौकें डाली जाती है। इस चौक के साथ और भी बहुत से सुमंगल चिन्ह ऐपन से रखे जाते हैं। पश्चिमी अवध में यह आलेखन

विशेष दर्शनीय होते हैं। सिंहासन पर बैठे शालिग्राम और गमले में लगी तुलसी को ऐपन की दो समानान्तर लकीरों से जोड़ दिया जाता है जिसे गांठ जोड़ना कहते हैं। पूरी, पुआ, हलवा, जलेबी से भगवान का भोग लगता है और प्रसाद बाँटा जाता है।

विजय दशमी के दिन से प्रारम्भ हुई इस पैंतीस दिवसीय तुलसी पूजा का समापन गंगा स्नान के दिन ही किया जाता है जो स्त्रियां इस पूरी अवधि में तुलसी की आरती नहीं कर पातीं वे कच्चे नये सूत की पैंतीस धागों की बत्ती बनाकर इस दिन बड़ी आरती करती हैं जिसे 'पैंतीसा' कहा जाता है। कहीं कहीं मकर संक्रान्ति पूजा में भी चौक रखी जाती है।

होली की रंगोली (दुगिया) : होली रंगों का पर्व है। ब्रज के बाद अवध में यह पर्व पूरे ज़ोर-शोर से मनाया जाता है। इस त्योहार का प्रारम्भ तो बसन्त पंचमी के दिन ही हो जाता है। माघ मास की शुक्ल पंचमी ऋतु राज की अगवानी का दिन है। बसन्त पंचमी, नागपंचमी के षटमासान्तर से पड़ती है और इस तरह यह दोनों प्रसिद्ध पंचमी चन्द्रवर्ष चक्र का व्यास खींचती हैं।

बसन्त के दिन जिस जगह होलिका दहन होना होता है सुपारी हल्दी रख कर लोग अंड का वृक्ष लगा देते हैं।

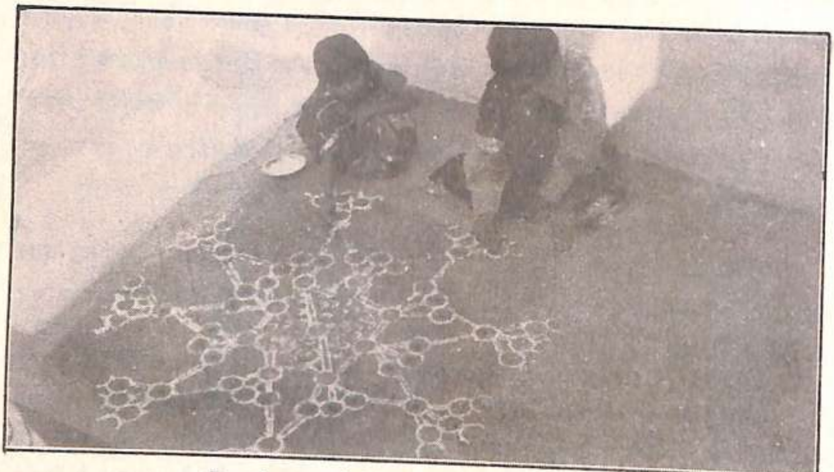

चित्र नं. 14 : होली की रंगोली (दुगिथा शैली)

अवधी के नैसर्गिक परिवेश में इस समय फूली सरसों के खेत बसन्ती चूनर लहराने लगते हैं। आम पर बौर आ जाते हैं, कोयल कूकने लगती है, ढाक पलाश पर किसलय फूटने लगते हैं। माली घर-घर डालियां सजाकर लाते हैं, जिसमें केला, कमरख, बेर, गेहूं की बालियाँ, मटर की फलियाँ, आम का बौर और पीले फूल होते हैं।

अवध के बैसवारा तथा सारे मध्य क्षेत्र में बसन्त का सुहाग लेने की प्रथा है। आंगन में गोबर से लीप कर आटे की चौक डाली जाती है जिसे हल्दी कुमकुम से सजाया जाता है। इसे 'बसन्ती चौक' कहते हैं। धोबिनें एक ढकी हुई थाली में मिट्टी के अनगढ़ शिव पार्वती बना कर लाती हैं और वह थाली इसी चौक पर उतारी जाती है। सुहागिनें धोबिन में अटल सुहाग प्रदान करने वाली "सोना धोबिन" (एक लोक कथा के आधार पर) मान कर उसका मान सम्मान करती हैं। पुजापे में गेंदें के पीले फूल, बेसन के पीले लड्डू और चने की पीली दाल, केले केफल चढ़ाती हैं। "गौरी-गिरीश" की पूजा करके पहले पार्वती से फिर धोबिन से सुहाग लेती हैं। बसन्त के बाद महाशिवरात्रि पर मंदिरों में पहले शिव तथा अन्य देवताओं को गुलाल चढ़ता है जो बाद में होली की रंगोली में भरा जाने लगता है।

सारे अवध में तो नहीं लेकिन अवध के पश्चिमी भाग की कुछ जातियों के अनुसार यहाँ भी होली की 'दुगिया' रखने का रिवाज है। हरदोई जनपद के अधिकांश में सभी लोग इस प्रथा का निर्वाह करते हैं। कान्यकुब्जों तथा कायस्थों में यह रीति अधिक देखी गई है। जिसमें सक्सेना कुल इसका विशेष संवाहक है। यह रंगोली का ही एक स्वरूप है। इस प्रथा के अनुसार फुलेरा दुइज (फाल्गुन शुक्ल पक्ष द्वितीया) से रोज शाम गोबर से आंगन लीप कर आटे से चौक पूरी जाती है यह क्रम दूज से लेकर होलिका दहन की पूर्णमासी तक बराबर चलता रहता है।

दुगिया डालने की कला में पारंगत बहू बेटियाँ चौकेके चमचे करछुल की पीठ पर आटा डालकर इसे परम्परागत शैली में बनाती हैं। बीच के चौख़ाने में पूरे चमचे से सूरज और आधे चमचे से चन्द्रमा रखे जाते हैं। इस रंगोली को विस्तार से बनाकर उसमें रंग बिरंगे गुलाल से मीनेकारी की जाती है। रंगोली के बीच की सजावट तर्जनी पर आटा रखकर अंगूठे से गिराकर जिस आकार में की जाती है इसी को 'दुगिया' कहा जाता है।

दुगिया रखते हुए लड़कियों दुगिया टोना गाती जाती हैं :-

'दुगिया दे, दुगौरी दे

भइया बाबा के राज

जब दुरि जइबै सासुरे

सासू खेलन न दे

दौड़ी दियना के घर जाय

दियना ज्योति जलावे

दुगौरी दें'

चौक डाल कर उस पर सरसों या भटकटैया के पीले फूल डाले जाते हैं। इसे 'फूल पड़ना' कहते हैं। घर के बाहर एक बड़ा कंडा रखा जाता है जिस पर रोज़ की दुगिया के फूल गुलाल समेट कर रख दिये जाते हैं और वह सब समिधा सामग्री होली पूर्णिमा के दिन जलती होली में डाल दी जाती है।

अवध के अन्य क्षेत्रों में भी जहाँ-जहाँ घर के आंगन में होली लगती है, दिन देख कर होली के बल्ले (गोबर के गोल तथा लम्बे, छेद दार उपले) बनाने शुरू कर दिए जाते हैं। होलिका दहन की सन्ध्या में इन छल्लेदार उपलों से सुन्दर वेदी बनायी जाती है जिसके चारों ओर आटे और गुलाल से कलात्मक चौक पूरी जाती है। घर के मर्द चौराहों पर लगी होली तापकर कुछ आग घर ले आते हैं जिसे इसी वेदिका में डाल दिया जाता है; फिर इसी आग में आखत (गेहूं चने की हरी बालियाँ) डाल-डाल कर घर की स्त्रियां होली तापती हैं और फेरियाँ देती हैं।

सारे अवध में ब्याही लड़कियाँ पहली होली पर अपने नैहर में ही रहती हैं। ससुराल की होली नहीं देखी जाती है यहाँ तक कि इस परम्परा का निर्वाह कस्बाती तथा ग्रामीण मुस्लिम घरानों में भी किया जाता रहा है। यहाँ के होरी गायन में सीता के लिए गाया जाता है:-

'पहली होली जनकपुर में खेली
दूजी अवध अंगनवा गुइयाँ '

कुछ अन्य लोकचित्रण :- सकट पूजा (माघ कृष्ण पक्ष चतुर्थी गणेश चौथ) तथा संकटा की पित्री में जो लोक देवता प्रस्तर पीठ या काष्ठ पीठिका (पत्थर के चकले या लकड़ी के पीढ़े पर) आरेखित किये जाते हैं उन्हें देशी घी से बनाया जाता है और जो पूजा के उपरान्त फूलों से विसर्जित कर दिये जाते हैं। सकट पीठिका पर बने इस गणेश स्वरूप के सामने तिल के पहाड़ या काले तिल का बकरा बनाने का चलन है जिसे चाँदी के सिक्के या फूल के वृन्त से काटा जाता है। इस पूजा में तिल, लइया, जुंधरी, रामदाना के गुड़ से बने चार तरह के लड्डू चढ़ते हैं तथा चावल की आसें व शकरकन्द रखी जाती है।

चौक की रस्म :- हिन्दू संस्कारों में "सीमन्तो नयन संस्कार" का विशेष महत्व है जो गर्भस्थ शिशु के सातवें महीने में किया जाता है। आम तौर से लोग इसे चौक की रस्म, गोद भराई या सतवासे की रीति कहते हैं। यह रस्म ससुराल के आंगन में पूरी की जाती है और इसके लिए उपहार लड़की के मायके से आते हैं जिसमें सर्वाधिक कलापूर्ण 'गोठे की साड़ी' सात गज सफेद तनजेब की होती है जो लड़की के मायके की बहू-बेटियाँ बड़े उत्साह से लोक रंगों तथा लोक आलेखनों से सुचित्रित करती हैं। इस प्रक्रिया को 'गोठा गोठना' कहते हैं। यह पूरी साड़ी बार्डर, बूटी और पल्लेदार बनायी जाती है। इसकी तमाम कारीगरी हल्दी मिले ऐपन सींक और फुलहरी द्वारा की जाती है। सज्जा को

अन्तिम रूप देने के लिये पीले सिन्दुर और काजल बिन्दुओं का प्रयोग किया जाता है। साड़ी की बेल और नीचे की बूटियों के लिए बदलते समय के साथ अब लकड़ी के छापों का प्रयोग भी होता है।

लकड़ी की पटलियों पर रख-रख कर औरते इसे प्रचीनतम परम्पराओं के अनुसार लिखती हैं तथा उस समय साधें गाती रहती हैं। 'साध' बच्चा होने की अभिलाषा और उमंग से भरे लोक गीत होते हैं जिसमें गर्भवती स्त्री के निवेदन और पति से मधुर सम्बन्ध की बातें मिलती है :-

'सतवा महिनां जब मोरे लागा

दाख, छुहारा मन लागा

तुरइयां हमें लाये देओ

अरे रंग रसिया'

गोठे की साड़ी का सर्वाधिक कला कौशल इसके आंचल पर होता है, जिसमें वह सारे मंगल प्रतीक लोक देवता, नर, पशु, वनस्पति तथा शुभ चिन्ह बनाये जाते हैं जो अवध के पूजा अवसरों पर रखे जाते हैं। इसमें चौगिरही चौक, सात पुतले, सिंगार का सामान, सूरज-चन्द्रमा, गंगा जमुना, जुगल चरण, सतिया, कमल, तुलसी, दर्पन आदि प्रमुख हैं। यह साड़ी लाल लहंगे पर पहनी जाती है और तब इसकी रंग योजना और भी अधिक मुखरित हो उठती है। इस रस्म में उस बहू का देवर कानों में किंगरी बजाता है। किंगरी चांदी से बनी एक छोटी बांसुरी की तरह होती है जिसकी ध्वनि में नवजात शिशु के प्रथम रुदन का संकेत होता है। उस समय परिवार की बड़ी बूढ़ियां बहू के आंचल में फल-फूल व मेवा मिठाई के साथ एक बबुआ भी गोद में डालती हैं।

इस चौक की रस्म में गोठा गोठने के समय स्त्रियां वो पारम्परिक साध भी गाती हैं जिसमें चौक की चर्चा होती है।

'अपने भवन से निकरी है गोरी

अंग पतरी, मुख दुरहुर गोरी

पहली साध मोरी सासू पुरावे

आंगन चौक पे कलश धरावे।'

इसमें कोई संदेह नहीं कि ये लोक कलायें जीवन को एक जादू भरा मोहक स्पर्श देतीं हैं। अवध के धरा अलंकरण में जो भाव बोध है वह जीवन के छिपे रहस्य का अर्थ, लहरदार लयात्मकता लिये हुये है। उजले लेपन का उजलापन जहाँ शान्ति व शुद्धता का परिचायक है, वही हल्दी का सुनहरापन

सुखों की शुभकामना का संदेश देता है। सूर्य और चन्द्रमा के सुनहरे और रुपहले अलौकिक आलोक के साथ आंगन में खींचे गये सरल ज्यमितीय कटाव के आलेखन हमारे संस्कारों की कहानियां कहते हैं। इन रचनाओं के वृत्त, त्रिकोण और चर्तुभुजों की व्याख्या वैदिक विज्ञान से ही सम्भव होती है। मंगल प्रतीकों की रेखाओं के सशक्त प्रवाह में जीवन को नयी चेतना के साथ जीने की नयी प्रेरणा मिलती है।

हमारे पर्व त्योहारों और शुभ संस्कारों पर बनाये गये ये मंगल प्रतीक उत्साह और उमंग के सगुण स्वरूप हैं। हमारी उपासना पद्धति के एक अंग हैं, जो हमे ईश्वर की ओर उन्मुख करते हैं। आज हमें इस संस्कृति, इस अनमोल धरोहर को सहेज कर रखने के लिए सजग होना ही पड़ेगा क्योंकि विघटनकारी युग में इनकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है। यह हमारी भारतीय जीवन शैली के गौरवमय मूल्य हैं।

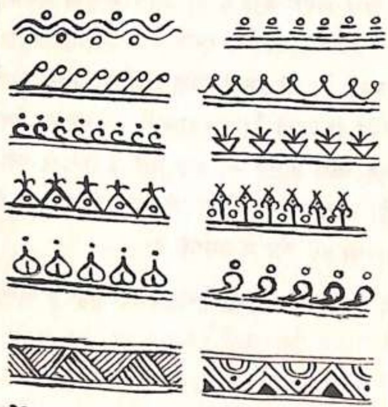

भूमि अलंकरण की प्रमुख बेलें (अवध)

पवित्र-देव आयुध

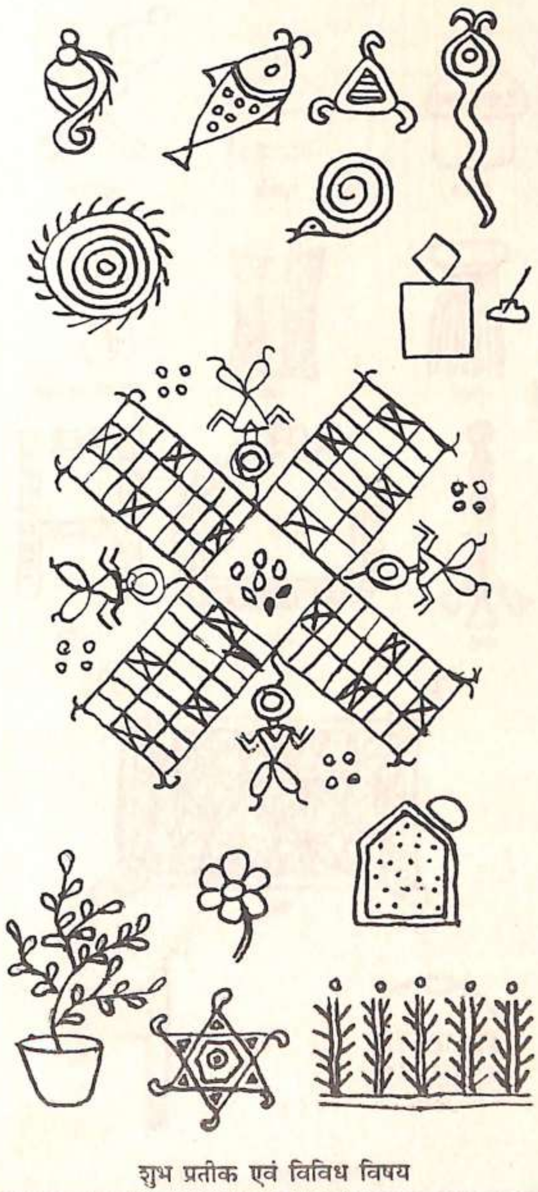

शुभ प्रतीक एवं विविध विषय

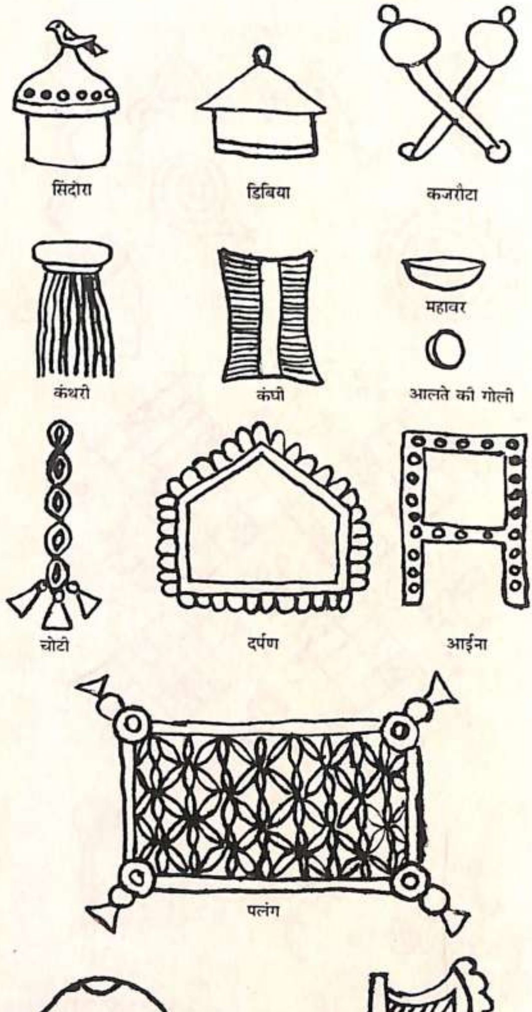

श्रृंगारिक सामग्री के आरेख